CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

गीता-हृदय

[श्लोक एवं सरलार्थ]

५१



जगद्धिताय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥

स्वामी सहजानन्द सरस्वती

महाशिवरात्रि
१६७४ ई०

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jal

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

गीता-हृदय

[श्लोक एवं सरलार्थ]

स्वामी सहजानन्द सरस्वती



पूज्य स्वामी जी की ८५वीं जयन्ती

महाशिवरात्रि, १९७४ ई०

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

प्रकाशक :—
श्री सीतारामाश्रम
बिहटा (पटना)

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

प्रथम संस्करण—१०००

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशकीय

ब्रह्मलीन पूज्य परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ दण्डि स्वामि सहजानन्द सरस्वती लिखित "गीता हृदय" का गीता की आज की सभी टीकाओं तथा भाष्यों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। उक्त ग्रन्थ के दो मुख्य भाग हैं—पहला "गीता हृदय" जिसे वस्तुतः गीता का हृदय कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में जिसे "गीता सर्वस्व" भी कह सकते हैं और दूसरा भाग "गीता" है, जिसमें गीता के श्लोकों का साधारण शब्दार्थ तथा कुछ टिप्पणियाँ जो साधारण अर्थ के लिये भी अत्यन्त आवश्यक हैं, दी गई हैं।

इधर कुछ दिनों से "गीता हृदय" अप्राप्य सा हो रहा है। बहुत कुछ चाहने पर भी परिस्थिति की अननुकूलता के कारण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हो सका तथा अतिनिकट भविष्य में उसके प्रकाशित होने की कोई आशा भी नहीं दीखती। अतः श्री सरयू सिंह तपसी सिंह जी, बिहटा, पटना (जो श्री स्वामी जी के अनन्य भक्त तथा उनके अन्तरङ्ग व्यक्तियों में रहे हैं) की इच्छा हुई कि क्यों न "गीता हृदय" का "गीता भाग" ही कुछ अत्यन्त आवश्यक टिप्पणियों के सहित जो छोड़ी नहीं जा सकतीं, प्रकाशित करके गीता प्रेमियों को गीता के साधारण अर्थ से, जो पूज्य स्वामी जी ने लिखा है, अवगत कराया जाय। अतः उन्होंने अपनी उदारता से प्रेरित होकर एक हजार प्रतियों के मुद्रण का सारा व्यय-भार स्वीकार करके गीता प्रेमियों में निःशुल्क वितरणार्थ अपनी इच्छा प्रकट की। फलतः यह पुस्तक आप गीता प्रेमियों के कर कमलों में प्रस्तुत की जा रही है। उक्त दोनों महानुभावों को उनकी इस उदारता तथा त्याग के लिये जितना भी धन्यवाद दिया जाय, उचित ही होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

प्रेमी पाठक, अत्यन्त शीघ्रता में प्रकाशित होने के कारण मुद्रण सम्बन्धी अशुद्धियों को सुधार कर पढ़ने की कृपा करेंगे।

सेवक
वैद्यनाथ शर्मा
अध्यक्ष,
श्री सीतारामाश्रम
बिहटा, पटना

×

स्वामी जी द्वारा मान्य

गीता-सप्तश्लोकी

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥२।४७॥

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥२।४८॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥३।१७॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥६।३॥

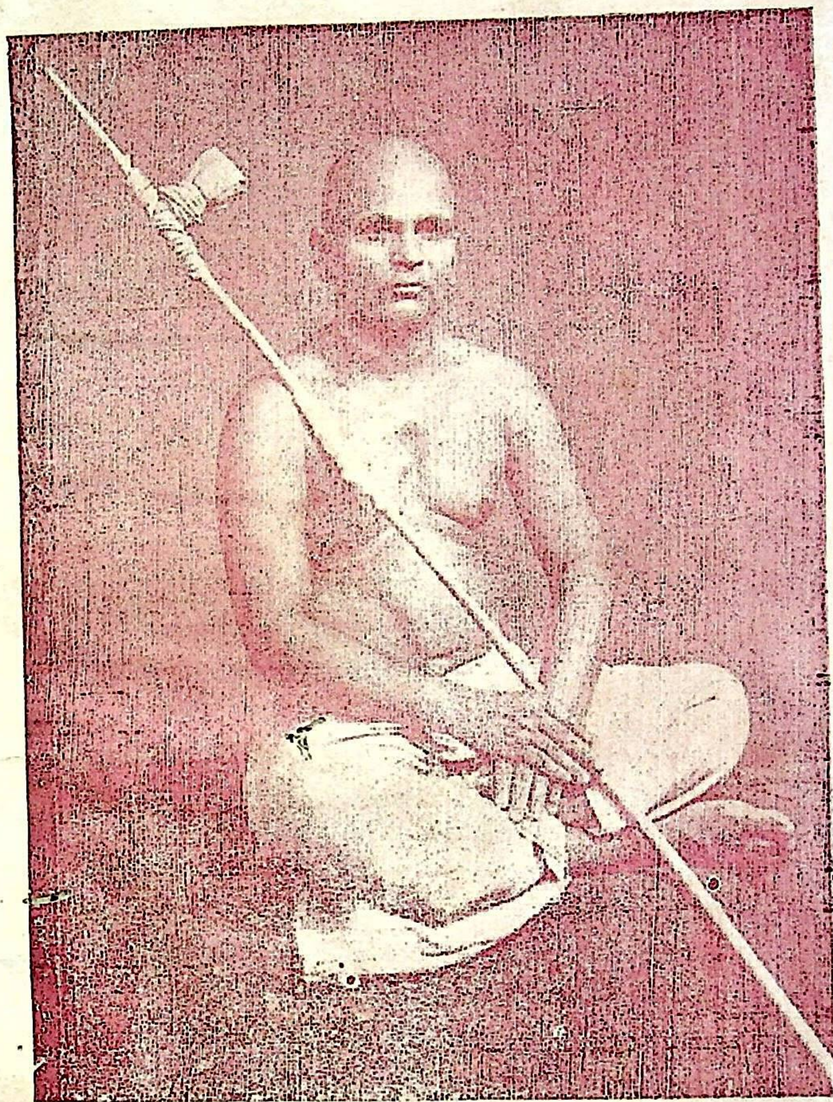
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥१७।३॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥१८।९॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१८।६६॥

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवेशिका

जिनने ज्यादा गौर नहीं किया है, या जो ध्यान से गीता नहीं पढ़ते, लेकिन इतना जानते हैं कि गीता महाभारत में ही लिखी है और उसी बड़ी पोथी में से अलग करके इसका पठन-पाठन तथा प्रचार होता है, वह आमतौर से ऐसा ही समझते हैं कि महाभारत के युद्ध के आरंभ होने के पहले ही उसका प्रसंग आने के कारण वह महाभारत की पोथी में भी उद्योग पर्व के बाद ही या भीष्म पर्व के शुरू होने के पहले ही लिखी गई होगी। यदि और नहीं तो इतना तो खयाल उन्हें अवश्य होता होगा कि गीतोपदेश को सुनने के बाद ही लड़ाई की बात धृतराष्ट्र को मालूम हुई होगी और भीष्म आदि की मृत्यु की भी।

मगर दरअसल बात ऐसी है नहीं। यह सही है कि युद्धारम्भ के पहले ही कृष्ण और अर्जुन के बीच गीता वाला सम्वाद हुआ, जिसे आज की भाषा में एक तरह का चखचुख भी कह सकते हैं। यदि देखा जाय तो गीता के दूसरे अध्याय के शुरू में, गीता के असली उपदेश के पहले, जो बातें कृष्ण एवं अर्जुन के बीच हो गई हैं वह चखचुख जैसी ही हैं। कृष्ण कहते हैं कि भई, ऐन लड़ाई के समय पर ही यह बड़ी बुरी कमजोरी तुममें कहाँ से आ गई? राम, राम, इसे दूर करो और फौरन कमर बाँध के तैयार हो जाओ। नामर्द की तरह कमर तोड़ के यह बैठ क्या गये हो? इस पर अर्जुन अपने इस काम के, इस मनोवृत्ति के समर्थन के लिये दलीलें करता और कहता है कि पूजनीय गुरु जनों के चरणों पर चन्दन, पुष्पादि चढ़ाने के बदले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

उनके कलेजे में तीर बेधूँ ? यह नहीं होने का। इन्हें मार के इन्हीं के खून से रँगे राजपाट जहन्नुम जायें। मैं इन्हें हर्गिज नहीं मारने का। यही न होगा कि न लड़ने पर राजपाट न मिलेगा ? तो इसमें हर्ज ही क्या है ? इन्हें न मारने पर तो भीख माँग के गुजर करना भी कहीं अच्छा है। यह राजपाट ठीक है या वह भिक्षावृत्ति, इसका भी निर्णय तो हो पाता नहीं। मैं तो घपले में पड़ा हूँ। यह भी तो निश्चय नहीं कि हमीं लोग खामखा जीतेंगे ही। ऐसी दशा में मुझे तो भिक्षावाला पक्ष ही अच्छा मालूम होता है।

यह प्रश्नोत्तर चखचुख ही तो है। असली चखचुख तो ऐसे संकट के ही समय हुआ करती है। फर्क यही है कि अर्जुन और कृष्ण की बातों का तरीका अत्यन्त परिमार्जित था, गंभीर था, जैसा कि गीता के शुरू के श्लोकों से पता चल जाता है। हाँ, इसके बाद अर्जुन ने यह जरूर किया कि अपनी ही बात पर अड़े न रहे। किन्तु कृष्ण से साफ ही कबूल किया कि मेरी अक्ल इस समय काम नहीं कर रही है। इसीलिये कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ठीक-ठीक फैसला कर पाता हूँ नहीं। आप कृपा करके मेरी भलाई के लिये जो बात उचित हो वही कहिये। मैं आपकी शरण आया हूँ। नहीं तो मेरे हृदय में जो महाभारत इस समय हो रहा है और जिसके करते सारी इन्द्रियाँ शिथिल होती जा रही हैं, वह मुझे मार डालेगा। उसकी शान्ति भूमंडल के चक्रवर्त्ती राज्य की तो क्या स्वर्ग की भी गद्दी मिलने से नहीं हो सकती है। इतना कहने के बाद, मैं तो लड़ूँगा हर्गिज नहीं, ऐसा बोलके अर्जुन चुप्प हो गये। उसी के बाद कुछ मुस्कराते हुये कृष्ण ने दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से गीतोपदेश शुरू किया।

बात यह है कि भीष्म के आहत हो जाने, किन्तु मरने के पूर्व, वीर क्षत्रियोचित शरशय्या पर उनके पड़ जाने की खबर जब धृतराष्ट्र को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

संजय ने दी, तो धृतराष्ट्र के कान खड़े हुये। उसने समझा कि रंग बदरंग है। तभी उसने संजय से घबरा के पूछा कि बोलो, बोलो, क्या हो गया? यह हालत कैसे हो गई, लड़ाई का श्रीगणेश कैसे हुआ, पहले किसने क्या किया और यह नौबत आने तक दूसरी बातें क्या-क्या हो गई? शुरू में बात यों हुई कि लड़ाई की सारी तैयारी देखके और अवश्यम्भावी संहार का खयाल करके व्यास धृतराष्ट्र के पास आये। यह तो मालूम ही है कि धृतराष्ट्र उनके पुत्र थे। इसलिये भी और सान्त्वना देने के साथ ही आगाह कर देने के लिये भी उनका आना जरूरी था। वही तो अब पथप्रदर्शक बच गये थे। बाकी लोग तो लड़ाई के मैदान में ही डँटे थे। उनने समझा कि शायद अन्धे धृतराष्ट्र को यह देखने की इच्छा हो कि अन्तिम समय तो भला पुत्रों और सम्बन्धियों को देख लूँ। भीष्मपर्व के पहले अध्याय में लड़ाई की तैयारी देखने और संहार का लक्षण जानने की बात कहके दूसरे में धृतराष्ट्र के साथ व्यास का सम्वाद लिखा गया है। वहाँ व्यास के यह कहने पर कि चाहो तो आँखें ठीक कर दूँ और सब कुछ देख लो, धृतराष्ट्र ने यही उत्तर दिया कि जिन्दगी भर तो कुछ देख न सका। तो अब आँख लेके भला यह वंशसंहार देखूँ? इसकी जरूरत नहीं है। हाँ, कृपया ऐसा प्रबन्ध कर दें कि वृत्तान्त अक्षरशः जान सकूँ।

इसपर व्यास ने धृतराष्ट्र के मंत्री संजय को बता के कहा कि अच्छा, तो इस संजय की ही आँखों में ऐसी शक्ति दिये देता हूँ कि यह रत्ती-रत्ती समाचार तुम्हें सुनायेगा। इसे हरेक बात की जानकारी बैठे-बैठे ही हो जाया करेगी। दिन में या रात में, प्रत्यक्ष परोक्ष जो कुछ भी होगा, यहाँ तक कि लड़ने वाले लोग मन में भी जिस बात का खयाल करेंगे, सभी की पूरी जानकारी इसे हो जाया करेगी। लेकिन इसी के साथ व्यास ने एक बार और भी धृतराष्ट्र को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

समझाने की कोशिश की कि वह दुर्योधन को समझा के अब भी रोक दे, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। व्यास को तो पता था ही कि धृतराष्ट्र और दुर्योधन की एक ही राय है। मगर धृतराष्ट्र पर तो इसका असर होने जाने का था नहीं। यही बातें दो और तीन अध्यायों में आई हैं। जब उनने देखा कि धृतराष्ट्र के मन में उनकी बात घुस नहीं रही है, प्रत्युत अभी तक उसे दुर्योधन आदि अपने ही पुत्रों की जीत की आशा लगी है, तब उनने उसका यह भ्रम मिटाने के लिये इतना ही बता दिया कि जो जीतता या हारता है उसकी हालत पहले से ही कैसी होती है। इसे ही शुभ-अशुभ लक्षण भी कहते हैं। फिर व्यास चले गये। इसके बाद धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा आखिर यह भूमि कितनी बड़ी है जिसे जीतने के लिये यह मार-काट होनेवाली है। भीष्मपर्व के चौथे से लेकर बारहवें अध्याय तक उसी भूमडल के सभी विभागों का वर्णन किया गया है। इसके बाद संजय कुतूहल-वश कुरुक्षेत्र की ओर चले गये। फिर वहाँ से लौट के धृतराष्ट्र को सुनाया कि लो, अब तो भीष्म आहत होके पड़े हैं। यह बात तेरहवें अध्याय से शुरू होती है और यहीं से गीतापर्व का श्रीगणेश होता है।

उसके बाद धृतराष्ट्र का रोना-गाना शुरू हुआ। फिर तो उसने भीष्म के आहत होने के सारे वृतान्त के साथ ही युद्ध की सारी बातें पूछीं और संजय ने बताईं। दोनों पक्षों की तैयारी की भी बात संजय ने कही। जिस प्रकार आज भी फौजों की नाकेबंदी होती है और अनुकूल जगह पर लड़ने वाले आदमियों, घुड़सवारों या तोप-खाने आदि को रखा जाता है। ठीक उसी प्रकार पहले भी रखा जाता था। इसी को व्यूह-रचना कहते थे। आज की ही तरह यह रचना कई तरह की होती थी। मगर उस समय की परिस्थिति तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अस्त्र-शस्त्र की प्रगति के अनुसार गाड़ी के गोल चक्के की सूरत में जब लोगों को खड़ा करते थे तो उसे चक्रव्यूह कहते थे। इसमें दुश्मन चारों ओर से घिर जाता था। इसे ही आज घेरना (encirclement) कहते हैं। जब कछुवे की सूरत में रखते जहाँ बीच में तोप आदि ऊँची जगह पर रहें तो उसे कूर्मव्यूह कहते थे। गीता के पहले अध्याय में इन्हीं व्यूहों का जिक्र है। ज्यादा फौज कम फौजों के अगल-बगल (flank में भी खड़ी हो जाती और आसानी से विजय पाती थी। इसीलिये धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा था कि हमारी फौज तो ग्यारह अक्षौहिणी प्रायः ११-१२ लाख—है, उसे उनकी सात ही अक्षौहिणी कैसे घेरेगी, या उसका सामना करेगी ? संजय ने इसी के उत्तर में कहा कि कौन, कहाँ, कैसे खड़े हैं और किसे कैसे खड़ा किया गया था। पश्चिम ओर पूर्व रुख पांडवों की और पूर्व ओर पश्चिम रुख कौरवों की सेना खड़ी थी। सारी तैयारी कैसे पूरी हुई, यह बात भी उसने कही। अन्त में कह दिया कि दोनों फौजें इस प्रकार आके आमने-सामने डँट गईं। शुरू में दुर्योधन पक्ष के सेनापति भीष्म और पांडव पक्ष के भीम थे, यह भी बताया।

इस प्रकार तेरहवें से शुरू करके चौबीस तक के अध्याय में ये बातें कह के गीतापर्व की एक तरह की भूमिका पूरी की गई है। फिर पचीसवें से लेकर बत्तीसवें तक में गीता के कुल अठारह अध्याय पूरे हुए हैं। पूरी तैयारी और आमने-सामने डँट जाने की बात सुनके ही गीता के पहले श्लोक में धृतराष्ट्र ने पूछा कि उसके बाद फौरन मार-काट ही शुरू हो गई या कुछ और भी बात हुई ? उसके उत्तर में ही संमूची गीता आ गई। इसी सिलसिले में एक और भी मजेदार बात हो गई थी।

गीतोपदेश के बाद जब अर्जुन लड़ने को तैयार हो गये तो एकाएक देखते हैं कि युधिष्ठिर कवच वगैरह उतार के नंगे पाँव कौरवों की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सेना की ओर तेजी से बढ़े जा रहे हैं। देखते ही अर्जुन आदि सभी घबरा गये। हालत यह हो गई कि ये पाँचो भाई कृष्ण के साथ उनके पीछे-पीछे दौड़े जा रहे हैं और कहते जा रहे हैं कि राम, राम, यह क्या कर रहे हैं? ऐन वक्त पर आप कहाँ चले? जब युधिष्ठिर न रुके, तो कृष्ण ने ताड़ लिया और लोगों को समझा दिया कि भीष्म आदि गुरुजनों से लड़ने के पहले आज्ञा लेने जा रहे हैं। यही शिष्टाचार है। उधर कौरव सेना वालों को बड़ी खुशी हुई कि लो, बिना मारे ही दुश्मन मरा। सचमुच युधिष्ठिर नामर्द है। नहीं तो ऐसे वीर-बाँकुड़े भाइयों और कृष्ण की मदद होते हुए भी क्यों दुर्योधन के पाँव पकड़ने आता?

इसी बीच युधिष्ठिर सबों के साथ ही पहले भीष्म के पास और पीछे क्रमशः द्रोण, कृप और शल्य के पास गये और चारों को प्रणाम करके लड़ने की आज्ञा तथा सफलता की शुभेच्छा चाही। पहले के तीन तो हर तरह से माननीय थे। शल्य भी था माद्री का भाई और भीम आदि का मामा। वह मद्र देश का राजा था। उसने युधिष्ठिर को आज्ञा दी और शुभेच्छा भी जाहिर की। मगर सबों ने एक बात ऐसी कही जो विचारणीय है और जिसका जिक्र हम पूर्व भाग में कर चुके हैं। चारों के मुख से एक ही श्लोक निकला, जो इस प्रकार है, "अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्। इति सत्यं महाराज, बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः।" यही श्लोक भीष्मपर्व के ४३वें अध्याय का ४१वाँ, ५६वाँ, ७१वाँ, तथा ८२वाँ है। इसका सीधा अथ यही है कि "महाराज अन्नधन का गुलाम आदमी होता है, न कि आदमी का गुलाम पैसा, यह पक्की बात है। इसीलिये कौरवों ने हमें गुलाम बना लिया है।"

जिन्हें मौत पर भी कब्जा हो और जो अपनी मर्जी के खिलाफ न तो हार सकें और न मर सकें उन लोगों ने जब संसार का पक्का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नियम ऐसा बता दिया और हिम्मत के साथ तदनुकूल ही अपनी स्थिति कबूल कर ली, तो मानना ही पड़ेगा कि यह बड़ी बात है। इसीलिये इस अप्रिय सत्य पर पूरा ध्यान न देके जो लोग कोरे अध्यात्म की राग अलापते रहते हैं वे कितने गहरे पानी में हैं यह बात स्पष्ट हो जाती है। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य तो ऐसा कहें और हम अध्यात्म से जरा भी नीचे न आयें यह विचित्र बात है! लेकिन जैसा कि हम दिखला चुके हैं, गीता इस कठोर सत्य को ख़ूब मानती है। वह इसे स्वीकार करके ही आगे बढ़ी है। शायद कोई ऐसा समझ ले कि उन महानुभावों ने योंही ऐसा कह दिया है। इसलिये उसी के बाद जो श्लोक चारों जगह आये हैं वे सोलहों आने एकसे न होने पर भी अभिप्राय में एकसे ही हैं। वह इस बात को और भी खोल देते हैं। हम द्रोण के कहे श्लोक को लिख के उसी का अर्थ बता देना काफी समझते हैं। एक श्लोक यों है, "ब्रवीम्येतत्क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत् किमिच्छसि। योत्स्येऽहं कौरवस्यार्थे तवाशास्यो जयो मया" (५७)। इसका भावार्थ यह है कि "यही कारण है कि आज मैं तुम्हारे सामने दब्बू की तरह बातें करता हूँ। लड़ूँगा तो दुर्योधन के ही पक्ष में। मगर विजय तुम्हारी ही चाहूँगा।" उनने साफ मान लिया कि युधिष्ठिर के सामने अन्नधन के ही लिये दबना पड़ा।

उसके बाद युधिष्ठिर सदल वापस आ गये और कुछ अन्य राजनीतिक चालों के बाद महाभारत की भिड़न्त शुरू हुई जिसका वर्णन ४४वें अध्याय से शुरू हुआ है। इस प्रकार अबतक जो कुछ कहा गया है उससे गीता के उपदेश की परिस्थिति का पूरा पता लग जाने से उसका तात्पर्य सुगम हो जाता है। इसीलिये गीता के प्रतिपादित विषय में प्रवेश के लिये और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

हां, कुछ नाम शुरू में आये हैं उन्हें यहीं जान लेना अच्छा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

धृतराष्ट्र दुर्योधन का पिता था और संजय धृतराष्ट्र का मंत्री यह तो कही चुके हैं। भीष्म, द्रोण और कृप को भी लोग जानते ही हैं। भीष्म बड़े बूढ़े और सबके पितामह थे। इसीलिये उन्हें भीष्मपितामह भी कहते हैं। शेष दो व्यक्ति आचार्य थे। उनने शिक्षा दी थी। अश्वत्थामा द्रोण का पुत्र था और विकर्ण था दुर्योधन का भाई। युयुधान एवं सात्यकि एक ही व्यक्ति के नाम हैं। भूरिश्रवा को ही सौमदत्ति (सोमदत्त का पुत्र) कहते थे। धृष्टद्युम्न द्रुपद का बेटा था और द्रुपद था द्रौपदी का पिता तथा पंचाल देश का राजा। विराट मत्स्य देश का राजा था। धृष्टकेतु शिशुपाल के लड़के का नाम था। चेकितान यदुवंशियों में एक योद्धा था। वसुदेव यदुवंशी ही थे, जिनके पुत्र कृष्ण थे। युधामन्यु और उत्तमौजा भी पंचाल देश के ही निवासी थे। शिबि देश के राजा को ही शैब्य लिखा है। कुन्ती जिस राजा को गोद में दी गई थी उसके वंश का नाम ही कुन्तिभोज था। उसी राजा का पुत्र पुरुजित् नामवाला था। इसीलिये पुरुजित् और कुन्तिभोज ये दो नाम न होके एक ही हैं। पुरुजित् के ही वंश का नाम कुन्तिभोज है। सुभद्रा कृष्ण की बहन थी उसकी शादी अर्जुन से हुई थी। इसीलिये सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु को ही सौभद्र कहा है। द्रौपदेय कहा है द्रौपदी के प्रतिविन्ध्य आदि पाँचो बेटों को। काश्य और काशीराज एक ही आदमी—काशी के राजा—को कहा गया है। शिखंडी को तो सभी जानते हैं। वह नपुंसक था और उसी की ओट में भीष्म मारे गये। क्योंकि नपुंसक पर वार वह करते न थे। हृषिकेश एवं गोविन्द कृष्ण का ही नाम है। गुडाकेश, पार्थ, सव्यसाची अर्जुन को ही कहते हैं। भारत अर्जुन को भी कहा है और धृतराष्ट्र को भी। कृष्ण के ही कुल को वृष्णिकुल और इसीलिये कृष्ण को वार्ष्णेय भी कहते हैं। गोविन्द, अरिसूदन, मधुसूदन, माधव नाम भी उनका है और भगवान या श्रीभगवान् भी। अर्जुन को परन्तप भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कहा है और पार्थ भी। पार्थ का अर्थ पृथा (कुन्ती) का पुत्र। कुन्ती के पुत्र होने से ही अर्जुन कौन्तेय कहे गये हैं।

गीता के शुरू में ही जो व्यूढ़ शब्द आया है उसका अर्थ है व्यूह के आकार में बनी या खड़ी फौज। व्यूह का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है। वहीं महारथ शब्द भी आया है। यह भी फौजी शब्द है। जैसे जो दस या ज्यादा शत्रु के हवाई जहाजों को खत्म कर दे उसे फ्रेंच या अंग्रेजी भाषा में एस (ace) कहते हैं। उसी तरह ये महारथ आदि शब्द भी पहले बोले जाते थे। योद्धा लोगों की ही यह संज्ञायें थीं और थीं ये चार—अर्द्धरथ, रथ, महारथ और अतिरथ। जो एक से भी अच्छी तरह न लड़ सके वह अर्द्धरथ, जो एक से लड़ सके वह रथ, जो अकेले दस हजार योद्धाओं से भिड़े वह महारथ और जो असंख्य लोगों से भिड़ जाये वह अतिरथ कहा जाता था—"एको दश सहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम्। शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स वै प्रोक्तो महारथः। अमितान्योधयेद्यस्तु संप्रोक्तोऽतिरथस्तु सः। रथस्त्वेकेन योद्धा स्यात्तन्न्यूनोऽर्द्धरथः स्मृतः।"

अब एक ही बात जानने के लिये रह जाती है और है वह कुरुक्षेत्र की बात। छान्दोग्य और वृहदारण्यक जैसे प्राचीनतम उपनिषदों में बार-बार कुरुदेश और कुरुक्षेत्र का नाम आता है। मनुस्मृति में भी ब्रह्मर्षि देश को बताते हुए दूसरे अध्याय में उसके अन्तर्गत कई प्रदेशों का नाम गिना के कहा है कि "कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शूरसेन इन्हीं चार देशों को मिलाके ब्रह्मर्षि देश कहा जाता है—कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसेनकाः। एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः।" उसी ब्रह्मर्षि देश का नाम पीछे कान्यकुब्ज हो गया। वर्त्तमान गुड़गांव, रोहतक आदि जिले कुरुक्षेत्र के ही भीतर हैं। उनसे पश्चिम बहुत दूर तक का प्रदेश ब्रह्मावर्त्त कहा जाता था। जाबालोपनिषद के पहले ही मंत्र में कुरुक्षेत्र का नाम आया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

परशुराम के बारे में यही माना जाता है कि उसी मैदान में उनने बार-बार क्षत्रियों का संहार किया। दिल्ली के पास का पानीपत का मैदान इधर भी कितनी लड़ाईयों का केन्द्र रहा है। वह कुरुक्षेत्र का ही मैदान है। उसीमें महाभारत का महायुद्ध भी हुआ था। भारत के लिये यह कत्लगाह है।

महाभारत के शल्यपर्व के कुल छब्बीस श्लोकों में इस कुरुक्षेत्र की चौहद्दी, इसके मुख्य स्थान आदि दिये गये हैं जो पुराने जमाने के नाम हैं। वहीं यह भी लिखा है प्रजापतियों की यह पुरानी यज्ञशाला है। यहीं पर देवताओं ने भी बड़े-बड़े यज्ञ किये थे। इसीलिये इसकी धूल तक पापनाशक मानी गई है। कुरुक्षेत्र का शब्दार्थ है कुरु का क्षेत्र या खेत। कुरु था कौरव-पांडव का मूरिस या पूर्वज। वहीं लिखा है कि इस जमीन को वह बराबर जोतता रहता था। इन्द्र ने उसे बार-बार रोका। पर उसने न माना। जोतने का मतलब कुछ साफ नहीं है सिवाय इसके कि कहा गया है कि भविष्य में जो यहाँ मरे उन्हें स्वर्ग मिले इसीलिये जोतना जारी था। अन्त में इन्द्र ने जब यह वरदान दिया कि जाइये यहाँ तप करने या लड़ने में जो मरेंगे वह जरूर स्वर्गी होंगे, तब उसने जोतना छोड़ा। इसीलिये कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र या धर्मभूमि कहते हैं।

आगे श्लोकों के अर्थ में आवश्यकतानुसार बाहर से जोड़े गये शब्द कोष्ठक में दिये गये हैं, यह याद रहे।

इसके अलावे कहीं-कहीं श्लोकार्थ के बाद छोटी-बड़ी टिप्पणियां भी दी गई हैं। वे साफ हैं।

पुराने समय में हाथ से पकड़ के जिन तलवार आदि हथियारों से हमला करते थे उन्हें शस्त्र कहते थे और जिन तीर आदि को फेंकते थे उन्हें अस्त्र कहते थे। उस समय फौज को भी बल कहते थे।

—×—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पहला अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—संजय, धर्म की भूमि कुरुक्षेत्र में जमा मेरे और पाण्डु-पक्ष के युद्धेच्छुक लोगों ने क्या किया ? ।१।

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

संजय ने कहा—उस समय पांडवों की सेना व्यूह के आकार में (सजी) देख के राजा दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास जाके बात बोला (कि)—२।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

आचार्य, पांडु के बेटों की इस बड़ी सेना को (तो) देखिये । इसकी व्यूह रचना आपके चतुर चेले द्रुपद-पुत्र (धृष्टद्युम्न) ने की है ।३।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इसमें शूर, बड़े धनुर्धारी (और) युद्ध में भीम एवं अर्जुन सरीखे सात्यकि, विराट, महारथी द्रुपद—४।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥५॥

धृष्टकेतु, चेकितान, वीर्यवान् काशिराज, कुन्तिभोज पुरुजित्, नरश्रेष्ठ शैब्य—५।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

पराक्रमी युधामन्यु, वीर्यवान् उत्तमौजा, अभिमन्यु और द्रौपदी के बेटे—ये सबके सब महारथी हैं।६।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥

द्विजवर, हमारे जो चुने-चुनाये लोग हैं उन्हें भी (अब) गौर से सुनिये। मेरी फौज के जो संचालक हैं उन्हें आपकी जानकारी के लिये बताता हूँ।७।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥८॥

(वे हैं), आप, भीष्म, कर्ण, युद्ध विजयी कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण और भूरिश्रवा।८।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

दूसरे भी बहुत से वीर हैं जिनने मेरे लिये प्राणों की बाजी लगा दी है, जो अनेक तरह के शस्त्र चलाने में कुशल हैं और सभी युद्ध विद्या में निपुण हैं ।६।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

भीष्म के द्वारा रक्षित (संचालित) हमारी वह सेना काफी नहीं है। (लेकिन) इन (पांडवों) की यह भीम के द्वारा संचालित सेना तो काफी है ।१०।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

(इसलिये) जिसकी जो जगह ठीक हुई है उसी के अनुसार आप सभी लोग नाकों पर डटे रहके केवल भीष्म की ही रक्षा करें ।११।

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

(इतने ही में) दुर्योधन को खुश करने के लिये सभी कौरवों में बड़े बूढ़े और प्रतापशाली भीष्म पितामह ने सिंह की तरह जोर से गर्जकर (अपना) शंख फूंका (शंख फूंकना युद्धारम्भ की सूचना है) ।१२।

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

उसके बाद एक-एक शंख, नफीरी (शहनाई), छोटे-बड़े नगाड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

और गोमुखी (ये सभी बाजे) बज उठे (और) वह आवाज गूंज उठी ।१३।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ।।१४।।

उसके बाद सफेद घोड़े जुते बड़े रथ में बैठे हुये कृष्ण और अर्जुन ने भी अपने दिव्य-अलौकिक या असाधारण-शंख (प्रतिपक्षियों के उत्तर में) फूंके ।१४।

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ।।१५।।

कृष्ण ने पांचजन्य, अर्जुन ने देवदत्त और भयंकर काम कर डालने वाले भीमसेन ने पौंड्र नामक बड़ा शंख फूंका ।

अनन्त विजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ।।१६।।

कुन्ती के पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्त विजय, और नकुल एवं सहदेव ने (क्रमशः) सुघोष तथा मणिपुष्पक (नाम के शंख बजाये) ।१६।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ।।१७।।

महाधनुर्धारी काशिराज, महारथी शिखंडी, धृष्टद्युम्न, विराट, अजेय सात्यकि—१७।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक् ।।१८।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

द्रुपद, द्रौपदी के सभी बेटे और लम्बी बाहों वाले अभिमन्यु इन सबने हे पृथिवीराज (धृतराष्ट्र) अलग-अलग शंख फूंके ।१८।

सघोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥

आकाश और जमीन को बार-बार गुंजा देनेवाले उस घोर शब्द ने दुर्योधन के पक्ष वालों का हृदय चीर दिया ।१९।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्र सम्पाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥२०॥

उसके बाद दुर्योधन के पक्ष वालों को बाकायदा तैयार देख के (और यह जानके कि अब) अस्त्र-शस्त्र छूटने ही वाले हैं, महावीर की चिह्नयुक्त ध्वजा वाले अर्जुन ने, -२०।

अर्जुन उवाच

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥

हे महीपति, कृष्ण से यह बात कही कि अच्युत, दोनों फौजों के (ठीक) बीच में मेरा रथ खड़ा कर दीजिए ।२१।

यावदेतान् निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥२२॥

ताकि लड़ाई के मन्सूबे वाले इन तैयार खड़े लोगों को देखूं (तो कि आखिर) इस लड़ाई की दौरान में मुझे किन २ के साथ लड़ना है ।२२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

ये जो युद्ध में नालायक दुर्योधन के खैरखाह बन के यहाँ आए हैं और लड़ेंगे उन्हें (जरा मैं) देखूँगा (कि आखिर ये हैं कौन लोग) ।२३।

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥

संजय ने कहा कि हे धृतराष्ट्र, अर्जुन के ऐसा कहने पर कृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में सर्वश्रेष्ठ रथ खड़ा करके— ।२४।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥२५॥

भीष्म, द्रोण तथा सभी राजाओं के सामने ही कहा कि अर्जुन, जमा हुए इन कुरु के वंशजों को देख ले ।२५।

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान् पौत्रान्सखींस्तथा ॥२६॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।

वहाँ अर्जुन ने देखा (कि ये तो अपने) पिता, पितामह, आचार्य मामा, भाई, पुत्र, पोते, मित्र, ससुर और स्नेही (लोग ही) दोनों ही सेनाओं में खड़े हैं ।२६।२७।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥२७॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

उन अपने ही सगे-सम्बन्धियों को खड़े देख अर्जुन को परले दर्जे की दया ने घेर लिया (और) विषादयुक्त होके वह ऐसा बोला ।२७,२८।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥२८॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोम हर्षश्च जायते ॥२९॥

अर्जुन बोला—हे कृष्ण, इन अपने ही लोगों को युद्ध की इच्छा से यहाँ जमा देख के मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं, मुँह बहुत सूख रहा रहा है, मेरे शरीर में कँप-कँपी हो रही है और रोयें खड़े हो रहे हैं ।२८।२९।

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक् चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

गांडीव धनुष हाथ से गिरा जा रहा है, त्वचा (समस्त शरीर) में आग सो लगी है, खड़ा रह सकता हूँ नहीं और मेरा मन चक्कर सा काट रहा है ।३०।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

हे केशव, लक्षण उलटे देख रहा हूँ। अपने ही लोगों को युद्ध में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

मार के खैरियत नहीं देखता ।३१।

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेनवा ॥३२॥

हे कृष्ण, (मैं) विजय नहीं चाहता, न राज्य ही चाहता हूँ और न सुख ही । हे गोविन्द, राज्य, भोग और जिन्दगी (भी) लेकर हम क्या करेंगे ? ।३२।

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥

जिनके लिये हमें राज्य, भोग और सुखों की चाह थी ये वही लोग (तो) प्राणों और धनों (की माया ममता) को छोड़ के युद्ध में डटे हैं ।३३।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वसुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥३४॥

आचार्य, बड़े बूढ़े, लड़के, दादे, मामू, ससुर, पोते, साले और सम्बन्धी (लोग) ।३४।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराजस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥३५॥

(यदि) हमें मारते भी हों (तो भी) हे मधुसूदन, मैं इन्हें त्रैलोक्य (संसार) के राज्य के लिये भी मारना नहीं चाहता; (फिर इस) पृथ्वी की (तो) बात ही क्या ? ।३५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

हे जनार्दन, धृतराष्ट्र के सम्बन्धियों को मार के हमें क्या खुशी होगी ? (उलटे) इन आततायियों को मारके हमें पाप ही लगेगा ।३६।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३७॥

इसलिए हमें अपने ही बन्धु-बान्धव कौरवों को मारना ठीक नहीं है। हे माधव, भला अपने ही लोगों को मारके हम सुखी कैसे होंगे ? ।३७।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥

यद्यपि लोभ के चलते चौपट बुद्धि वाले ये (दुर्योधन वगैरह) कुल संहार के दोष और मित्रों की बुराई करने के पाप को समझ नहीं रहे हैं ।३८।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३९॥

(तथापि) हे जनार्दन, कुल के संहार के दोष को जानते हुए भी हम इस पाप से बचने के लिए (यह बात) क्यों न समझें ? ३९।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

कुल के क्षय होने से सनातन-चिरन्तन या पुराने-कुल-धर्म चौपट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

हो जाते हैं और धर्मों के नष्ट हो जाने पर समूचे कुल को अधर्म दवा लेता है ।४०।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥४१॥

हे कृष्ण, अधर्म के दबाने पर कुलीन स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं (और) स्त्रियों के बिगड़ जाने पर, हे वार्ष्णेय, वर्ण संकर हो जाता है। ४१ ।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदक क्रियाः ॥४२॥

(और यह) वर्ण संकर कुलघातियों को और (समूचे) कुल को (भी) जरूर ही नरक ले जाता है। क्योंकि इनके पितर या बड़े बूढ़े पिंड और तर्पण की क्रियाओं के लुप्त हो जाने से पतित हो जाते हैं—नीचे जा गिरते हैं (और जब बड़े बूढ़े ही पतित हो गये तब तो अधोगति एवं अवनति का रास्ता ही साफ हो गया) ।४२।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४३॥

वर्णसंकर पैदा करने वाले कुलघातियों के इन दोषों के करते सनातन जातिधर्मों और कुल धर्मो का नाश हो जाता है ।४३।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

हे जनार्दन हम ऐसा सुनते हैं कि जिन लोगों के कुल धर्म (आदि) निर्मूल हो जाते हैं उन्हें जरूर ही नरक में जाना पड़ता है ।४४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥

ओह, अफसोस, हम बहुत बड़ा पाप करने चले हैं। क्योंकि राज्य और सुख के लोभ से अपने ही लोगों को मारने के लिये तैयार हो गये हैं ।४५।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४६॥

(विपरीत इसके) अगर मैं शस्त्र--रहित होके अपने बचने का भी कोई उपाय न करूँ (और ये) शस्त्रधारी दुर्योधन के आदमी मुझे मार (भी) डालें तो भी मेरा भला ही होगा ।४६।

सजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

संजय बोला—चिन्ता और अफसोस से उद्विग्न चित्त अर्जुन ऐसा कहके (और) धनुष-वाण को छोड़ के युद्ध के मैदान में ही रथ में बैठ गया ।४७।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में उपनिषद् रूपी ब्रह्मज्ञान प्रतिपादक योग शास्त्र में जो श्रीकृष्ण और अर्जुन का सम्वाद है उसका अर्जुन-विषाद योग नामक पहला अध्याय यही है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

दूसरा अध्याय

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

संजय ने कहा-इस तरह कृपा से ओत-प्रोत, आँसूभरी बेचैन आँखों वाले और विषादयुक्त उस अर्जुन से मधुसूदन ने आगे वाली बात कही ।१।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥२॥

श्रीभगवान बोले—अर्जुन, ऐसे संकट के समय में लड़ाई के मैदान में—तुम में यह गन्दगी कहाँ से आ गई ? गन्दगी भी ऐसी कि जिसे भले लोग कभी अपनाते नहीं; जो उन्नति की ओर तो लेजाने वाली नहीं । (हाँ) बदनामी फैलानेवाली (जरूर) है ।२।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥३॥

पार्थ, नामर्दी मत दिखाओ । यह तुम्हें शोभा नहीं देती । ओ दुश्मनों को तपाने वाले, हृदय की (इस) नाचीज कमजोरी को छोड़ के खड़ा हो जाओ ।३।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्जुन कहने लगा—हे मधुसूदन-मधुदैत्य के नाशक, हे अरिसूदन —शत्रुनाशक, (चन्दन, पुष्पादि से) पूजा करने योग्य भीष्म पितामह तथा द्रोणाचार्य के साथ इस युद्ध में वाणों से लड़ूँ कैसे ? ४।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयोभोक्तुं भैक्ष्यमपीहलोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीयभोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

गुरुजनों-बड़े बूढ़ों- को न मार के इस दुनिया में भीख से भी गुजर करना कहीं अच्छा है। अर्थलोलुप गुरूजनों को मारकर तो यहीं पर (उन्हीं के) खून से रंगे पदार्थों को भोगना होगा।५।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्त्तराष्ट्राः ॥६॥

यह भी तो नहीं मालूम कि हमारे लिये (दोनों में) कौन सी चीज अच्छी है (और यह भी नही जानते कि) हम (उन्हें) जीतेंगे या वे लोग ही हमें जीतेंगे। जिन्हीं को मारके हम जीना नहीं चाहते वही धृतराष्ट्र के बेटे सामने ही डँटे हैं।६।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढ़चेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

कुछ भी निश्चय न कर सकने के फलस्वरुप मुझे कुछ सूझता ही नहीं और धर्म के निर्णय के बारे में मेरी बुद्धि घपले में पड़ गई है। (इसीलिए) आप से पूछता हूँ मेरे लिए जो ठीक हो वही पक्का पक्की कहिए। मैं आपका शिष्य हूँ। मुझ शरण में आये को-शरणागत को—सिखाइये—रास्ता बताइये।७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोक मुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

क्योंकि भूमंडल का निष्कंटक समृद्ध राजपाट और देवताओं का आधिपत्य—इन्द्र का पद—मिल जाने पर भी मुझे तो (ऐसी चीज) नजर नहीं आ रही है जो इन्द्रियों (तक) को सुखा डालने वाले मेरे इस शोक को दूर कर सके ।८।

सजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं वभूवह ॥९॥

सजय कहने लगा—शत्रु को तपाने वाला अर्जुन हृषीकेश—कृष्ण से इस तरह कहके और (उन्हीं) गोविन्द से (यह भी) कहके कि (हर्गिज) न लड़ूंगा, चुप्प हो गया ।९।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निवभारत ।
सेनयोरूभयोर्मध्ये विपीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

[इस पर], दोनों फौजों के बीच [खड़े] शोकाकुल अर्जुन से कृष्ण [उसका] कुछ उपहास करते हुए से कहने लगे ।१०।

श्री भगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानु शोचन्ति पंडिताः ॥११॥

श्री भगवान ने कहा—[यह अजीब बात है कि एक ओर तो] तू उन्हीं की चिन्ता करता है जिनकी करना न चाहिए और [दूसरी ओर] अक्ल की बातें बोलता है। [क्योंकि] पंडित लोग [तो] मरे-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जियों की चिन्ता करते ही नहीं। [शोक या चिन्ता के मानी हैयहाँ पर्वा करना]।११।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

ऐसा तो होसकता नहीं कि हम पहले कभी न भी थे, तुम्हीं न थे [या] ये राजे हीं न थे और यह भी नहीं कि इसके बाद भी हम सभी न होंगे।१२।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

जिस तरह आत्मा या जीव के इस शरीर की लड़कपन, जवानी बुढ़ापा [ये तीन दशाएँ होती हैं], ठीक उसी तरह दूसरी देहों—जन्मों की प्राप्ति भी है। [इसलिए] उस बात में समझदार [कभी] धोखे में नहीं पड़ता है।१३।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुखदुखःदा ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

हे कौन्तेय, भौतिक पदार्थों के सम्बन्ध सर्दी-गर्मी की तरह कभी सुख और कभी दुःख देते रहते हैं (जरूर)। मगर यह ठहरे तो आने-जाने वाले ही और इसीलिए चन्दरोजा ही। (अतएव) इन्हें तो बर्दाश्त करना ही होगा हे भारत !१४।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
सम दुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ, सुख-दुःख में एक रस रहने वाले जिस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

पुरुष को ये पदार्थ उद्विग्न नहीं कर पाते वही अमृतत्व-मुक्ति-प्राप्त करता है।१५।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

जो पदार्थ पहले न हो उसका अस्तित्त्व होई नही सकता-वह बनी नहीं सकता, (और) जो मौजूद है,सत्ता वाला है उसका नाश या खात्मा भी नहीं हो सकता। इन दोनों बातों का निर्णय तत्त्व-दर्शी लोगों ने (ही) कर दिया है।१६।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्त्तुमर्हति ॥१७॥

अविनाशी तो वही वस्तु- आत्मवस्तु- जानो जो इस समूचे जगत् को फैलाती, बनाती है और जो इसमें व्याप्त है इसकी रग रग में घुसी है। इस अविनाशी, निर्विकार का नाश कोई भी कर नहीं सकता।१७।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥

इन शरीरों के मालिक अविनाशी तथा अचिन्त्य (आत्मा) के ये शरीर तो विनाशी ही कहे गए हैं, माने गये हैं। इसलिए युद्ध करो हे अर्जुन !१८।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(इसलिये) जो इस आत्मा को मारने वाली मानता है और जो इसे मरने वाली समझता है उन दोनों ही को असलियत मालूम नहीं है। क्योंकि यह तो न मारने वाली है (और) न मरने वाली ।१६।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

(क्योंकि) यह (आत्मवस्तु) न तो कभी जनमती है और न मरती है (और यह भी इसीलिये कि) यह पहले न रहके पीछे होती जो नहीं और होके उसके वाद नहीं रहती भी नहीं। इसोलिये यह जन्मरहित, नित्य—काल से जो घिरी न हो—, हमेशा रहने वाली और प्राचीन (से भी प्राचीन) चीज है (जो) शरीर नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होती ।२०।

वेदा विनाशिन नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्तिकम् ॥२१॥

(इसलिये) हे पार्थ, जो पुरुष—मर्दाना—इस आत्मा को जन्म रहित, विकार शून्य, अविनाशी और काल के घेरे से बाहर जानता है—मानता है, समझता है, अनुभव करता है—वह (भला) किसे मरवाता (और) किसे मारता है ? २१।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।२२।

जिस तरह पुराने कपड़ों को (खुशी-खुशी) छोड़के (कोई भी कपड़ा पहने) आदमी दूसरे नये कपड़े पहनता है। ठीक उसी तरह देह धारण करने वाली—देही—आत्मा पुराने शरीरों को छोड़के दूसरे नये शरीरों में पहुंचती है— उन्हें स्वीकार करती है ।२२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

इसे शस्त्र काटते ही नहीं, न अग्नि जलाती है। पानी भी भिगोता नहीं और न हवा सुखाती है।२३। (क्यों ? इसलिये कि,—)

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥

यह काटा जा सकता नहीं, जलाया भी नहीं जा सकता। यह न (तो) भिगोया ही जा सकता है और न सुखाया जा सकता ही है। (इसीलिये) यह (आत्मा रूप पदार्थ) समय के घेरे से बाहर, सर्वत्र मौजूद, सबों का आधार, अचल और हमेशा रहने वाला है।२४।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

यह आत्मा व्यक्त (स्थूल पदार्थ—दृष्टि में आनेवाली—तो) है नहीं और न बुद्धि की ही पकड़ में आ सकती है। (इसीलिये) यह निर्विकार कही जाती है। अतएव इसे इस तरह जान लेने पर तुम्हारा बार-बार रोना-धोना ठीक नहीं है।२५।

अथ चैनं नित्य जातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

और अगर तुम इसे बराबर जनमने और मरने वाली हीं मानते हो, तो भी ओ बहादुर—शक्तिशाली भुजावाले—तुम्हारा इस तरह अफसोस करना अच्छा नहीं है।२६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२७॥

क्योंकि पैदा होने वाले की मौत —अवश्यंभावी—है । मरे हुये का जन्म भी ध्रुव है। इसलिये जिन बातों में किसी का वश हई नहीं उन्हीं के बारे में तुम्हारी यह चिन्ता-फिक्र कभी मुनासिब नहीं हो सकती है ।२७।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

हे भारत, सभी भौतिक पदार्थ आरम्भ में—पहले—अव्यक्त ही होते हैं, अदृश्य ही रहते हैं, बीच में व्यक्त और दृश्य होते हैं और अन्त में फिर खामखा अदृश्य होई जाते हैं। तब इसमें चिन्ता क्या ? २८।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

इस (आत्मा) को जानने वाला कोई बिरला ही होता है। (जानकर भी दूसरों को इसे) बताने वाला तो (और भी) बिरला होता है। (यदि कोई बताने वाला हुआ भी तो) इसके सम्बन्ध में बात सुनने वाला (तो उससे भी) बिरला होता है। (खूबी तो यह है कि) इसे पढ़-सुन के भी कोई जानता ही नहीं—शायद ही कोई मुश्किल से जाने ।२९।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

(इसलिये जब) हे भारत, सबों के देह की मालिक यह (आत्मा) कभी भी मारी जा सकती है नहीं, तो (नाहक) किसी भी भौतिक पदार्थ के बारे में तुम्हारा अफसोस करना अच्छा नहीं है ।३०।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

अपने धर्म का ख्याल करके भी तुम्हारा (युद्ध से) डिगना उचित नहीं है । क्योंकि क्षत्रिय के लिये (तो) धर्म-युद्ध से बढ़ के कोई चीज होई नहीं सकती ।३१।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥३२॥

हे पार्थ, अकस्मात् या आप ही आप खुले स्वर्ग के द्वार के रूप में हाजिर इस तरह का युद्ध तो खुश किस्मत क्षत्रियों को ही मुयस्सर होता है ।३२।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्त्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥

और अगर तुम यह धर्मयुद्ध न करोगे तो अपने धर्म और कीर्त्ति दोनों को गँवा के (केवल) पाप बटोरोगे ।३३।

अकीर्त्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

(इतना ही नहीं), लोग तुम्हारे अखंड अपयश—हमेशा रहने वाली बदनामी—की चर्चा भी करते रहेंगे । और प्रतिष्ठित (पुरुष) के लिये (यह) अपयश तो मौत से भी बढ़कर (बुरा) है ।३४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

(यही नहीं), महारथी लोग भी समझेंगे कि तू डर के मारे ही युद्ध से भाग गया है। (फलतः) जो लोग (आज) तुझे ऊँची नजर से देखते हैं उन्हीं की नजरों में तू गिर जायेगा ।३५।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

(इसी प्रकार) तेरे दुश्मन भी तुझे बहुत सी गालियाँ देंगे (और) तेरी ताकत की भी शिकायत करेंगे। भला, उससे बढ़ के बुरा और क्या हो सकता है ३६।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

(यह भी तो देख कि) यदि युद्ध में मर जायेगा तो स्वर्ग जायगा और अगर जीतेगा तो राजपाट मिलेगा। (इस प्रकार तेरे दोनों ही हाथों में लड्डू है।) इसलियें ओ कौन्तेय, लड़ने का निश्चय करके खड़ा हो जा—डँट जा ।३७।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभलाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

जय-पराजय, हानि-लाभ और सुख-दुःख में एक रस रह के युद्ध मेंडँट जा। ऐसा होने पर तुझे पाप छूयेगा भी नहीं ।३८।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगेत्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो ययापार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥३९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यहाँ तक (तो) आत्मतत्व की जानकारी —आध्यात्म ज्ञानकी खूबी और वारीकी—तुम्हें बताई जा चुकी। अब योग की भी जानकारी—कर्म की पूरी जानकारी और उसको बारीकी—वाली वह बात भी सुन लो जिसके करते कर्मों के बन्धन से अपना पिंड छुड़ा लोगे।३९।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

इस (योग) में (किसी भी) कदम—काम—का नाश तो होता नहीं—कोई भी कदम बेकार नहीं जाता, इसमें पाप (का सवाल) हुई नहीं और इस (महान्) धर्म का थोड़ा भी (अनुष्ठान) (इसके करने वाले को) महान भय से बचा लेता है। अर्थात् इसमें कोई खतरा भी नहीं है कि कहीं अधूरा रह जाने में उलटा ही परिणाम हो जाय। इसका परिणाम सदा ही सुन्दर होता है।४०।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

हे कुरुनन्दन (अर्जुन), इसमें तो एकही (तरह) की बुद्धि रहती है (सो भी) निश्चयात्मक। (विपरीत इसके और मार्ग में) अनिश्चयात्मक बुद्धि वालों की बुद्धियाँ (एक तो) असंख्य होती हैं। (दूसरे उनमें भी हरेक की) अनेक शाखा प्रशाखाएँ होती हैं।४१।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेद वादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्म कर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेष बहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

हे पार्थ, वेद के कर्म-प्रशंसक वचनों को ही सब कुछ मान के उनके अलावे असल चीज दूसरी हई नहीं ऐसा कहने वाले, वासनाओं में डूबे हुए मन वाले और स्वर्ग को ही अन्तिम ध्येय माननेवाले नासमझ लोग इस तरह के जिन लुभावने (वैदिक) वाक्यों को दुहराते रहते हैं उन (वचनों का तो सिर्फ यही काम है कि) भोग और शासन को प्राप्ति के लिये ही अनेक तरह के बहुत से कर्मों को बतायें। (इस तरह) उनका नतीजा यही है कि लोग बार-बार जनमते तथा कर्म करते रहें। जिन भोग एवं शासन के लोलुप लोगों की बुद्धि वैसे ही वचनों में फँस चुकी है उनके दिमाग में तो (कभी) निश्चयात्मक बुद्धि पैदा ही नहीं होती ।४२।४३।४४।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

हे अर्जुन, वेदतो (प्रधानतया) त्रैगुण्य या सांसारिक बातों के ही प्रतिपादक हैं। तुम इस बातों को छोड़ो, राग द्वेषादि द्वन्द्व—जोड़े—दो दो—से रहित हो, हमेशा सत्वगुण की ही शरण लो, योग-क्षेम की पर्वा छोड़ दो मन को वश में करो और आत्म तत्त्व में रम जाओ ।४५।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

(जिस तरह) जितना काम छोटे-बड़े जलाशयों से निकलता है वह सभी केवल एक ही विस्तृत जल राशि वाले समुद्र या जलाशय से चल जाता है; (उसी तरह) वेदों से जितना काम चलता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आत्म ज्ञानी विद्वान का वह सब का सब (यों ही) चल जाता हैं—पूरा हो जाता है ।४६।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥
योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥

तुम्हारा अधिकार केवल कर्म में है; (कर्मों के) फलों में हर्गिज नहीं। कर्मों के फलों का खयाल (भी) न करो। कर्म के त्याग में तुम्हारा हठ न रहे। हे धनंजय, योग में हीं कायम रहके, आसक्ति या करने का हठ छोड़ के तथा वे खामखा पूरे हों यह पर्वा छोड़ के कर्मों को करो। इसी समता या लापर्वाही—बेफिक्री और मस्तानगी—को हीं योग कहते हैं ।४७।४८।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४९॥

हे धनंजय, विवेक-बुद्धि रूपी योग की अपेक्षा कर्म कहीं छोटी चीज है। (इसलिये) उसी विवेक बुद्धि की ही शरण जा। क्योंकि जो लोग उस विवेक-बुद्धि से रहित होते हैं वही तो फल की आकांक्षा करते (और इसलिये कर्म करते हैं) ।४९।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

इस संसार में (उस) विवेक बुद्धि वाला (मनुष्य ही तो) पुण्य-पाप दोनों से पिंड छुड़ा लेता है। इसलिये (उस) बुद्ध्यात्मक योग (की ही प्राप्ति) के लिये यत्न करो। वह योग ही तो कर्मों (के करने) की चातुरी या विशेषज्ञता हैं, कुशलता है। ५०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलंत्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।५१।।

क्योंकि बुद्धि युक्त मनीषी— पहुँचे हुए—लोग ही कर्मों से होने वाले (सभी) फलों से नाता तोड़ के जन्म (मरण) के बन्धनों से छुटकारा पा जाते (तथा) निरुपद्रव पद—निर्वाण मुक्ति—प्राप्त कर लेते हैं ।५१।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।५२।।

जब तेरी अक्ल इस बुद्धिभ्रम के कीचड़ से पार हो जायगी (तो) उस समय तुझे सभी बातों से विराग हो जायगा, (फिर चाहे वह) जानी-सुनी हो या जानने योग्य हों ।५२।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।५३।।

इस प्रकार वेद शास्त्रों की सभी बातों से मन के विरागी हो जाने पर) उनके करते घपले तथा दुविधे में पड़ी तेरी अक्ल जब अन्तःकरण या दिमाग के भीतर ही रुक के वहीं सदा के लिये जम जायगी तभी (समझना कि) बुद्धि रूपी योग प्राप्त हो गया ।५३।

अर्जुन उवाच ।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव !
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।।५४।।

अर्जुन ने पूछा—हे केशव, जिसकी बुद्धि स्थिर तथा समाधि में अचल हो गई है—जो योगी बन चुका है—उसकी परिभाषा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लक्षण—क्या है ? वह किस तरह बोलता, कैसे बैठता और कैसे चलता है ?५४।

श्री भगवानुवाच ।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।५५।।

श्री भगवान ने कहा, हे पार्थ, जब मन के भीतर घुसी सभी कामनाओं को जड़मूल से खत्म कर देता और आत्मा में ही—अपने आप में ही—अपने से ही—खुदबखुद सन्तुष्ट रहता है तभी उसे स्थितप्रज्ञ या असल बुद्धिवाला कहते हैं ।५५।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।५६।।

दुखों से जिसका मन उद्विग्न न हो सके, सुखों (की प्राप्ति) के लिए जो परीशान न हो और राग, भय एवं द्वेष-क्रोध-ये तीनों ही—जिसके बीत गये या खत्म हो चुके हों वही मननशील—मुनि—स्थित प्रज्ञ कहा जाता है ।५६।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभि नन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५७।।

जो किसी भी पदार्थ में ममता नहीं रखता—चिपका नहीं होता; इसीलिए जो बुरे-भले (पदार्थों) के मिल जाने पर न तो उनका अभिनन्दन ही करता है और न उन्हें कोसता ही है, उसी की बुद्धि स्थिर मानी जाती है ।५७।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५८।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जब यह (योगी) अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से एकबारगी ठीक उसी तरह समेट लेता है जैसे (संकट के समय) कछुआ अपने सभी अंगों को, (तब) उसकी बुद्धि स्थिर मानी जाती है ।५८।

विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥५९॥

आहार छोड़ देने वाले मनुष्य के विषय तो (स्वयं) हट जाते हैं । (मगर उनके प्रति) राग द्वेष बने रह जाते हैं । ये भी निवृत्त हो जाते हैं (सही; लेकिन) ब्रह्मरूपी आत्मा को देखने पर ही, आत्म तत्व के ज्ञान के बाद ही ।५९।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

हे कौन्तेय, पूरा समझदार पुरुष के (हजार) यत्न करते रहने पर भी (ये) बेचैन कर देनेवाली इन्द्रियाँ मनको (अपनी ओर) बलात् खींच लेती हैं ।६०।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

उन सबों—इन्द्रियों—को रोक—कब्जे में कर—के आत्मा में ही मन को रमाये हुए डँटा रहे । क्योंकि (इस प्रकार) जिसके वश में इन्द्रियाँ हों वही स्थितप्रज्ञ है ।६१।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूप जायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धि नाशो बुधिनाशात्प्रणश्यति ।।६३।।

विषयों—इन्द्रियों के विषयों या भौतिक पदार्थों—का ख्याल करते ही मनुष्य के (दिल में उनके प्रति) राग या आसक्ति पैदा हो जाती है। राग से (उनको प्राप्ति की) इच्छा होती है। इच्छा से क्रोध होता है। क्रोध से जबर्दस्त अन्धकार जैसा मोह पैदा हो जाता है उस संमोह का फल होता है हर तरह की स्मृति—स्मरण या याद—का खात्मा। स्मृति के खत्म हो जाने से विवेक शक्ति जाती रहती है। विवेक शक्ति के चौपट हो जाने पर वह चौपट हो जाता है।६२, ६३।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।६४।।
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।६५।।

राग और द्वेष से शून्य तथा अपने कब्जे में रहने वाली इन्द्रियों के द्वारा (आवश्यक) विषयों को भोगने वाले पुरुष का तो मन अपने अधीन रहने के कारण (चित्त की) प्रसन्नता (ही) प्राप्त होती है। प्रसन्नता होने पर इस (मनुष्य) की सारी तकलीफें खत्म हो जाती हैं। क्योंकि प्रसन्नचित्त पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही सर्वथा स्थिर हो जाती है।६४।६५।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।६६।।

अयुक्त को बुद्धि ही नहीं होती। जिसे बुद्धि ही न हो उसे भावना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भी नहीं होती। जिसे भावना न हो उसे शान्ति नहीं मिलती। जिसे शान्ति ही नहीं उसे सुख कहाँ ?६६।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥६७॥

क्योंकि (विषयों में) रमने वाली इन्द्रियों के पीछे जब मन लग जाता—चला जाता—है तो (अपने साथ ही) बुद्धि को भी (विवश करके) वैसे ही खींच लेता है जैसे मझधार में पड़ी नाव को वायु (विवश करके इधर-उधर खींचता और अन्त में डुबो देता है) ।६७।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

इसीलिये हे महाबाहो, जिसकी सभी इन्द्रियाँ (अपने-अपने सभी) विषयों से पूरी तरह खींच ली गई हैं उसी की बुद्धि स्थिर होती है ।६८।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

सब लोगों के लिए जो रात है उसमें संयमी—योगी—जागता है (और) जिसमें लोग जगते हैं निरन्तर भीतरी आँखें खुली रखने वासे उस मुनी—मननशील—के लिए वही रात है ।६९।

आपुर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

सभी तरह से निरन्तर- पानी के आते रहने पर भी जिसका पानी जरा भी बढ़ता नजर नहीं आता और ज्यों का त्यों बना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

रहता है—जिसमें जरा भी उफान नहीं आता, ऐसे समुद्र में घुस के उसी का रूप बन जाने वाले पानी की ही तरह सभी भौतिक पदार्थ जिस (पुरुष) के पास आते हैं (और उसकी गभीरता में जरा भी फर्क डाल नहीं सकते) वही शान्ति प्राप्त करता है, न कि पदार्थों के लिये हाय-हाय मचाने वाला ।७०।

विहाय कामन्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१॥

(इसलिए) सभी पदार्थों को छोड़ के—उसकी जरा भी पर्वा न करके—जो पुरुष निःस्पृह विचरता है और जिसमें माया-ममता—अहन्ता ममता—जरा भी नहीं होती, वही शान्ति प्राप्त करता है—उसी को शान्ति मिलती है ।७१।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

हे पार्थ, यही ब्राह्मी स्थिति कही जाती है। इसे हासिल कर लेने पर फिर मोह नजदीक फटक सकता नहीं। अन्त समय में भी इस दशा में आ जाने वाला (मनुष्य) निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ।७२।

इति श्री मद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे सांख्ययोगोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

श्री मद्भगवद्गीता के रूप में (जो) उपनिषद रूपी ब्रह्मज्ञान प्रतिपादक योग शास्त्र (है उस) में जो श्री कृष्ण और अर्जुन का संवाद है उसका सांख्ययोग नामक दूसरा अध्याय यही हैं।

—: ० :—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तीसरा अध्याय

तीसरे अध्याय का श्रीगणेश अर्जुन के प्रश्न से होता है । वह प्रश्न भी कर्म के ही बारे में किया गया है। इससे साफ हो जाता है कि दूसरे अध्याय के ३९ वें श्लोक में जिस योग या कर्मयोग के निरूपण का सूत्रपात्र किया गया था, वही उस अध्याय के अन्त तक होता रहा है। क्योंकि बींच में यदि कोई दूसरी बात खास तौर से आने को होती तो अर्जुन का यह प्रश्न यहाँ न होके वहीं हो जाता । जब कर्म के सम्बन्ध में यह सवाल है तब तो उसका पूरा निरूपण हो जाने और उसके मुतल्लिक सारी बातें सुन लेने के बाद ही फौरन इसे आना चाहिये। नहीं तो योंही हवाई बात होने के कारण प्रधान विषय से इसका ताल्लुक रही न जायगा। इसीलिये और बातों के निरूपण का प्रसंग आते ही अर्जुन फौरन खामखा यही प्रश्न पहले ही पूछ बैठता और इस प्रकार कृष्ण को मौका ही न देता कि दूसरा विषय छेड़ दें । क्योंकि तब तो कर्मकी बात नीचे पड़ जाती और वह नया विषय ही ऊपर आ जाता। इसीलिये यह तो निर्विवाद है कि कर्मयोग वाली बात ही इसके पहले या यों कहिये कि दूसरे अध्याय के अन्त तक आई है।

यह भी तो विदित होई चुका है कि इस कर्मयोग के निरूपण के सूत्रपात से लेकर अन्त तक जो बातें कही गई हैं उन पर अध्यात्म-ज्ञान, तत्वविवेक, मनोनिरोध और मस्ती की मुहर कदम-कदम पर लगी हुई है। मालूम होता है कि ये सभी बातें कर्मयोग के प्राण की तरह, जीवन विन्दु की तरह हैं। फलतः इनके अलग करते ही कर्म योग कुछ रही नहीं जायगा—वह निरा कर्म रह जायगा । क्योंकि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इन बातों को कर्मयोग से अलग करने का सीधा अर्थ हो जायगा कर्मयोग से योग को ही निकाल के कर्म को उसी रूप में छोड़ देना और अकेले रहने देना जिस रूप में आम तौर से हमेशा से पाया जाता है। कर्म के उस रूप को ही लेके गीता ने अपने निराले करिश्मे और अलौकिक मंतर-यंतर के रूपमें उसे परिमार्जित एवं शुद्ध करने का उपाय निकाला है। गीता के इस उपाय के पहले का कर्म खाँटी लोहे या पारे के ढंग का है जिसका जरा भी प्रयोग मारक बन जाता है, अनेक व्याधियों को पैदा करता है—जन्म-मरण के चक्र एवं उससे उत्पन्न संकटों का अनवरत प्रवाह जारी रखता है। गीता का उपाय उस लोहे या पारे को भस्म करके—मार के—अमृत बना देता है, रस बना देता है, जिसके सेवन से न सिर्फ व्याधियाँ दूर होती हैं, किन्तु अपार शक्ति मिल जाती है। इसीलिये कृष्ण ने इस उपायकी, इस तरकीब की, इस हिकमत और बुद्धिकी--अक्ल और युक्तिकी— खूब प्रशंसा की है कि इस बुद्धिरूप योग की अपेक्षा कर्म अत्यन्त तुच्छ है—"दूरेणह्यवरंकर्म" (२।४६।) उसी श्लोक में इस योग, उपाय या हिकमत को बुद्धि ही कहा भी है। उसके पहले के "यावानर्थ उदपाने" (२।४६) में भी इस ज्ञान या बुद्धि की प्रशंसा की है और कहा है कि इसी से सब काम चल जाता है।

इसी के साथ "एषातेऽभिहिता" (२।३९) में यह साफ ही कह दिया है कि दो मार्ग स्वतंत्र रूप से पाये जाते हैं—एक है सांख्या या सांख्ययोग का मार्ग और दूसरा है योग या कर्मयोग का मार्ग। संक्षेप में इन्हें सांख्य और योग या ज्ञान और कर्म के मार्ग भी कहते हैं तथा ज्ञानयोग एवं कर्मयोग भी। यह भी साफ ही है कि कर्मयोग के मार्ग में भी यह ज्ञान लगा ही है। अर्जुन बहुत ज्यादा बारीकी समझ सका भी नहीं। उसने सीधे और साफ देख लिया कि ज्ञान या बुद्धिवाला सांख्य मार्ग हर तरह से उत्तम बताया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उसके मुकाबले में दूसरे या कर्म के मार्ग की कोई गिनती नहीं है। यदि कर्म कर्मयोग बन जाता भी है तो इस अध्यात्मज्ञान के करते ही। फिर तो निस्सन्देह यही सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ है, उसने यही निष्कर्ष निकाला। मगर इसी के साथ उसने यह भी देखा कि "तस्माद्युध्यस्व" (२।१८), "उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः" (२।३७,) तथा "युद्धाय युज्यस्व" (२।३८) में साफ ही मुझे युद्ध करने की आज्ञा देके इस युद्धात्मक घोर कर्म में ही लगाया जा रहा है और बार-बार कहा जा रहा है कि सोच फिक्र न कर, चिन्ता मत कर, आदि आदि। वह कृष्ण को अपना सबसे बड़ा हितेच्छु मानता था। इसीलिये वह आगा-पीछा में पड़ गया कि यह क्या बात है ? एक ओर तो ज्ञान मार्ग सर्वोत्तम बताया जा रहा है। दूसरी ओर मेरे लिये हिंसामय युद्ध ही कर्त्तव्य कहा जा रहा है ! वह घबरा गया और इसी पशोपेश में पड़के कुछ भी निश्चय न कर सकने के कारण कृष्ण से—

अर्जुन उवाच।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥१॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

अर्जुन ने पूछा—हे जनार्दन, हे केशव यदि कर्म की अपेक्षा बुद्धि-ज्ञान—को ही श्रेष्ठ मानते हैं तो फिर (हिंसात्मक युद्ध जैसे) घोर कर्म में मुझे क्यों लगाते हैं ? (असल में) आप के बीच-बीच में मिले-जुले वचनों से ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे मुझे घपले में डाल रहे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

हों। इसलिए पक्का-पक्की निश्चय करके दोनों में एक को ही मुझे बताइये, जिससे मैं कल्याण प्राप्त कर सकूँ।१।२।

श्री भगवानुवाच।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुराप्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

श्री भगवान ने उत्तर दिया—हे पापरहित (अर्जुन) इस संसार में दो प्रकार के मार्ग हमने पहले ही—पूर्व समय में—ही बताए हैं (एक तो) ज्ञानियों का ज्ञान योग और दूसरा योगियों का कर्म योग।३।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४॥

(लेकिन कोई भी) आदमी कर्मों को शुरू न करके कर्म-त्याग या संन्यास प्राप्त कर सकता नहीं। (और खामखा) कर्मों के त्याग से ही सिद्धि नहीं मिलती—इष्ट या कल्याण की—मोक्ष की—प्राप्ति नहीं हो जाती।४।

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशःकर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

(यह भी तो है कि) कोई भी क्षण भर भी बिना कर्म किये रह नहीं सकता। क्योंकि प्रकृति के गुणों से मजबूर होके सभी को कर्म करना ही होता है।५।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(इसलिए) जो (हाथ, पाँव आदि) कर्म करनेवाली इन्द्रियों को (जबर्दस्ती) रोक के मन से इन्द्रियों के विषयों को याद करता रहता है वह ढोंगी कहा जाता है।६।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।७।।

(विपरीत इसके) हे अर्जुन, जो तो इन्द्रियों को मन के अधीन करके कर्मेन्द्रियों से काम करना शुरू कर देता है (और फलादि के लिए) हाय-हाय करता नहीं रहता वही अच्छा है।७।

नियतं कुरू कर्मत्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।।८।।

(इसलिए) तुम अपने लिए निश्चित कर्म (जरूर) करो। क्योंकि न करने से करना कहीं अच्छा है। (आखिर) कर्म सर्वथा छोड़ देने पर तुम्हारी शरीर-यात्रा भी तो न चल सकेगी।८।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ।।९।।

हे कौन्तेय, (जबकि) यज्ञ के लिए किए गए कर्मों के अलावे बाकी कर्मों से ही लोग बन्धन में फँसते हैं, तो तुम आसक्ति या हाय-हाय छोड़ के यज्ञार्थ कर्मों को ही ठीक-ठीक करो।९।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।१०।।

पूर्व समय—सृष्टि के आरम्भ काल—में ब्रह्मा ने लोगों—प्रजा—को यज्ञही के साथ पैदा करके कह दिया कि (इस) यज्ञ के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जरिये खूब फलो-फूलो और तरक्की करो (और) यह तुम्हारे लिए कामधेनु का काम दे।१०।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

इस यज्ञ के द्वारा तुम देवताओं को सन्तुष्ट करो, पुष्ट और समुन्नत करो और वे देवता तुम्हें भी वैसा ही करें। (इस तरह) परस्पर एक दूसरे को सुखी-सम्पन्न बनाते हुए परम कल्याण—मोक्ष—प्राप्त करो।११।

इष्टान् भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

क्योंकि यज्ञों के द्वारा तृप्त और प्रसन्न किए गए देवता तुम्हें सभी अभिलषित पदार्थ देंगे। इसीलिए उन्हीं के दिए इन पदार्थों को उन्हें भेंट न करके जो (स्वयंमेव) हड़प लेता है वह अवश्यमेव चोर है।१२।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

यज्ञ के बाद बचे-बचाए पदार्थों को भोगनेवाले सत्पुरूष सभी पापों और बुराइयों से छुटकारा पा जाते हैं। (लेकिन) वे पापी लोग तो पाप को ही भोगते हैं जो केवल अपने ही लिये (पदार्थ) पकाते है—तैयार करते हैं।१३।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

अन्न से प्राणी और सत्ताधारी पदार्थ बनते हैं—उत्पन्न होते हैं । वृष्टि से अन्न पैदा होता है । यज्ञ से वृष्टि होती है । कर्मों से यज्ञ बनता है—यज्ञ का स्वरूप तैयार होता है । कर्म वेद (जैसे ज्ञान-भंडार) से ही मालूम होते हैं—जाने जाते हैं और वेद जैसा ज्ञान भंडार अविनाशी (समष्टि महाभूत परमात्मा) से पैदा होता है । इसीलिए सभी बातों को अवगत कराने—जनाने—वाले वेदरूपी ज्ञान भंडार का तात्पर्य यज्ञ करने में ही है । यज्ञ ही उसका आधार भी है ।१४।१५।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थस जीवति ॥१६॥

(इसलिए) हे पार्थ, इस प्रकार जारी किये गये (यज्ञ) चक्र को इस दुनिया में जो (आदमी) कायम नहीं रखता (उसका) जीवन पापमय है, वह केवल इन्द्रियों को ही तृप्त करनेवाला है । (इसीलिए) उसका जीना बेकार है ।१६।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

(लेकिन) जो मनुष्य तो आत्मा में ही रम गया है, आत्मा ही में तृप्त है और आत्मा में ही सन्तुष्ट है उसका कुछ भी कर्त्तव्य रही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

नहीं जाता है। न तो उसके करने से कुछ बनता ही है और न नहीं करने से बिगड़ता ही। सभी भौतिक पदार्थों में कोई भी ऐसा हुई नहीं जिसका आश्रय वह किसी भी कामके लिए ले।१७।१८।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥

इसलिए आसक्ति छोड़ के—पूर्व बताये ढंग की हाय-हाय छोड़ के—अपना कर्त्तव्य कर्म ठीक-ठीक करते रहो। क्योंकि आसक्ति छोड़ के कर्मों को करने से मनुष्य परात्मा को प्राप्त कर लेता है।१९।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोक संग्रहमेवापि संपश्यन्कर्त्तु मर्हसि ॥२०॥

आखिर संसिद्धि—ब्रह्म निर्वाण—को प्राप्त हुए जनक आदि भी (तो) कर्म करते ही रहे—उनने कर्म को ही अपना साथी बराबर बनाये रखा। इसलिए लोक संग्रह—संसार का पथ प्रदर्शन—करने का ही ख्याल करके भी (तो) तुम्हें कर्म करना ही होगा—करना ही चाहिए।२०।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते।२१॥

बड़े लोग जो-जो करते हैं वही-वही काम जन साधारण भी करते हैं। बड़े जितना करते और जिसे सही मानते लोग भी उतना ही करते और उसी को सही मानते हैं।२१।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥२२॥

हे पार्थ, तीनों लोक—सारे संसार में—मेरा कुछ भी कर्त्तव्य रह नहीं गया है। ऐसा भी नहीं कि कोई वस्तु मुझे हासिल न हो (और) उसे प्राप्त करना हो। फिर भी (देखो न) कर्म में लगा ही रहता हूँ।२२।

यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

क्योंकि हे पार्थ, अगर मैं (खुद) कभी भी आलस्यरहित होके कर्म करने से हिचकूं तो सभी लोग मेरा ही रास्ता (चट) अखतियार कर लेंगे।२३।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

(नतीजा यह होगा कि) यदि मैं कर्म न करूं तो ये सभी लोग—सारी दुनिया—ही चौपट हो जायें। (इस तरह) मैं ही वर्णसंकर करने का जिम्मेदार बन जाऊं (और) इस सारी प्रजा का नाशक हो जाऊं।२४।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वाँस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

हे भारत, कर्मों में लिपटे-चिपटे अनजान लोग जिस तरह उन्हें (पूरा दिल लगाके) करते हैं विद्वान भी वैसा ही दिल लगाके करें। (मगर फर्क यही रहे कि एक तो वह) उनकी तरह लिपटा-चिपटा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

न रहे या हायतोबा न करे । दूसरे उसका लक्ष्य लोकसंग्रह ही रहे ।२५।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

कर्मों में लिपटे-चिपटे भोले अज्ञानी जनोंकी (उस ऊँट की पकड़वाली एक) अक्ल को छिन्न-भिन्न (हर्गिज) न करे। किन्तु योगी विद्वान स्वयं सभी कर्मों को करता हुआ (देखा-देखी) उनसे भी करवाये ।२६।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताऽहमिति मन्यते ॥२७॥

(क्योंकि यद्यपि) प्रकृति के गुणों के द्वारा ही सभी कर्म किये जाते हैं (न कि आत्मा करती है। तो भी) जिनकी आत्मा अहन्ता-ममता—मैं और मेरे के खयाल—के करते बिलकुल ही मोह में—घोर अंधेरे में— फँसी है; फलतः जिन्हें (कुछ भी नहीं सूझता,) वह अपने आप को ही करनेवाले माने बैठे होते हैं ।२७।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्त्तन्त इति मत्त्वा न सज्जते ॥२८॥

हे महाबाहो, (इसके विपरीत) जो लोग गुणों और कर्मों के हिसाब-किताब और ब्योरे को पूर्ण रूप से जानते हैं—उसकी असलियत को देखते हैं—(कि किस गुण के साथ किस कर्म का कैसा ताल्लुक है) वह तो, यही जानकर कि गुणों से बनी कर्मेन्द्रियाँ ही उन्हीं से बने कर्मों में लगी हैं, उन कर्मों में लिपटते नहीं ।२८।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

प्रकृतेर्गुणसंमूढ़ाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥२६॥

(लेकिन) जो प्रकृति के गुणोंकी इन सभी बातों को कतई जानते ही नहीं, वे गुणों के कर्मों में खुद फँस जाते हैं। (इसीलिये) सारी बातों को पूर्ण रूप से न जान सकने वाले उन नादानों को सभी बातों का जानकार आदमी (हर्गिज) घपले में न डाले।२६।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०॥

(इसलिये तुम) आत्मज्ञान के बल से सभी कर्मों को मुझ में—भगवान में—अर्पण करके (और) सभी तरह की आसक्तियों एवं ममताओं से रहित होके मस्ती के साथ लड़ो।३०।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥

जो मनुष्य हमारे इस सिद्धान्त के अनुसार काम करने की बराबर कोशिश करेंगे और मेरी बातों में श्रद्धा रखने के साथ ही निन्दा की जरा भी भावना न रखेंगे उनका भी कर्मों से छूटकारा होगा।३१।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

विपरीत इसके जो लोग मेरे इस सिद्धान्त की निन्दा करते हुए इसके अनुष्ठान का यत्न नहीं करते, समझ लो कि उन्हें किसी बातकी जरा भी जानकारी नहीं है। हैं वे निबुंधि और चौपटानन्द ही।३२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥

ज्ञानी भी (तो) अपनी प्रकृति के अनुसार ही चलता है । (क्योंकि) सबों के प्रकृति के अनुकूल ही चलना होता है । इसमें रोक-थाम क्या करेगी ?३३।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ । ३४॥

प्रत्येक इन्द्रिय के विषय के साथ राग और द्वेष नियमित रूप से लगे हैं । इसलिये उनके वश में कभी न जाये । क्योंकि इस आत्मा के बटमार और लुटेरे वही दोनों हैं ।३४।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

दूसरे के बहुत अच्छी तरह पूरे किये गये धर्म की अपेक्षा अपना धर्म (देखने में) खराब या अधूरा रहने पर भी कहीं अच्छा है । (इसलिये) अपने धर्म के पीछे मर मिटना ही अच्छा है । दूसरे का धर्म तो खतरनाक है ।३५।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

अर्जुन ने पूछा—हे वार्ष्णेय, भला (बताइये तो सही कि) हजार न चाहने पर भी यह मनुष्य बुरा कर्म किसके दबाव से—क्यों—कर डालता है ? मालूम पड़ता है, जैसे किसी ने जबर्दस्ती करवाया हो !३६।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

श्रीभगवान ने उत्तर दिया—यह काम—राग—है और यही क्रोध—द्वेष—भी है। इसकी उत्पत्ति रजोगुण से होती है। इसका पेट कभी भरता ही नहीं। यह पुराना पापी है। इस दुनिया में इसी को बैरी समझो।३७।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

जैसे धूएँ से आग छिपी रहती है, जिस तरह मैल से आईना छिपा होता है, (या) जिस प्रकार गर्भ की झिल्ली में बच्चा छिपा रहता है, उसी तरह उस काम नें इस (ज्ञान) को छिपा दिया है।३८।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

ज्ञानियों के सदा के इस शत्रु ने, जिसे काम कहते हैं, जो कभी पूरा होता ही नहीं और जिसका अन्त भी नहीं होता या जो आग की तरह भीतर ही भीतर जलता रहता है, ज्ञान को छिपा रखा है।३९।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि (यही तीन) इसके अड्डे हैं। इन्हीं के द्वारा ज्ञान और भले-बुरे के विवेक पर पर्दा डाल के यह काम आत्मा को भटका देता है—किंकर्त्तव्यविमूढ़ कर देता है।४०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

इसलिये हे भरतश्रेष्ठ, पहले तुम इन्द्रियों को ही नियंत्रण में लाके ज्ञान और विज्ञान को चौपट करने वाले इस बदमाश को जड़ से जरूर खत्म करो ।४१।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

(और पदार्थों की अपेक्षा) इन्द्रियाँ ऊँची या बड़ी हैं, इन्द्रियों से भी बड़ा मन है, मन से ऊपर बुद्धि है और जो बुद्धि के भी ऊपर है वही वह (आत्मा है) ।४२।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

हे माहाबाहो, बुद्धि के भी ऊपर रहने वाली आत्मा को इस प्रकार जानकार और स्वयमेव मन को रोकके, वश में करके बड़ी दिक्कत से पकड़े जानेवाले कामरूपी इस शत्रु को खत्म करो ।४३।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में उपनिषद रूपी ब्रह्मज्ञान प्रतिपादक योगशास्त्र में जो श्री कृष्ण और अर्जुन का संवाद है उसका कर्मयोग नामक तीसरा अध्याय यही है ।

—: ० :—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

चौथा अध्याय

अब तक कृष्ण ने जो उपदेश अर्जुन को दिया है उससे उसकी आँखों का पर्दा हट गया और उसे नई दुनिया दीख पड़ी। उसने तो कुछ दूसरा ही समझ रखा था। लेकिन इन दो अध्यायों के उपदेशों के बाद पाया कुछ और ही। दूसरे अध्याय के उपदेशों के उपरान्त अर्जुन के दिमाग की सफाई हो पाई न थी। क्योंकि उसके सामने तो असली मसला था युद्ध का। यों तो सारे कर्मों की ही समस्या उसे सुलझानी थी। कारण, उसकी तर्क-दलील ने इनके पुराने आधारों और दुर्गों को ही ध्वंस कर दिया था। धर्मशास्त्रीय विधान उसके सामने लापता थे—पस्त थे। तो भी उसका असली संकट था मरने-मारने वाला यह जघन्य कृत्य जिसे युद्ध कहते हैं। सामने तत्काल वही था भी। उसी को लेके उसे इतना बड़ा विराग भी हुआ था और स्वतंत्र बुद्धि से उसने सारे विधानों को तौल के उन्हें कच्चा तथा नाकाफी ठहराया था। इसलिये तीसरे अध्याय के शुरू में ही उसने अपना मनोभाव साफ व्यक्त कर दिया था कि, खैर एक तो कर्म ही बुरे और तुच्छ हैं, फिर उसमें भी यह घोर कर्म ! मुझे इसमें फँसाने का क्या काम है यदि ज्ञान ही श्रेष्ठ है, यह उसने साफ कह दिया था। अबतक ज्ञान मार्ग की खूबियाँ वह जान सका था जरूर। मगर कर्मों की पेचेदगी उसे विदित हो सकी न थी। वह समस्या अभी उलझी हुई थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मगर कृष्ण ने तीसरे अध्याय में जो कुछ भी कहा उससे सारी बातें आईने की तरह झलक उठीं। अब उसके मन में शक-शुभे की जरा भी गुंजाइश रही नहीं गई थी। अगर कहें तो कह सकते हैं कि एक प्रकार से गीता का काम इतने से ही पूरा हो जाता है। असली और मुख्य जो दो बातें गीता की हैं वे इन्हीं दोनों में आ गई हैं। यह ठीक है कि इनके कुछ पहलू छूटे हैं और उन्हीं का निरूपण आगे के ४, ५, ६ अध्याओं में हो जाने पर शेष गीता में इन्ही बातों का स्पष्टीकरण करके १८ वें में उपसंहार किया है। इस दृष्टि से तीसरे अध्याय के अन्त में ज्ञान विज्ञान का उल्लेख महत्वपूर्ण है। उससे पता चलता है कि जिस ज्ञान और विज्ञान की बात आगे पुनरपि सातवें अध्याय में शुरू होती है और नवें में फिर जिसका जिक्र करते हैं वही गीता की असल चीज है। उसके वर्णन दूसरे और तीसरे अध्यायों में मुख्यतया आ भी चुके हैं। हाँ जो कुछ उसके खास पहलू बचे थे उन्हीं का आगे छठें अध्याय तक मिरूपण है, विवेचन है।

हाँ, तो पिछले अध्यायों के उपदेशों से अर्जुन को कुछ खास बातें भी मालूम हो गई जिनका उसे स्वप्न में भी खयाल न था। आत्मा की अजरता, अमरता और अविनाशिता का जो सुन्दर वर्णन हुआ है और मरण-जीवन को जिस अपूर्व ढंग से बताया गया है कि दरअसल ये क्या हैं, उनने उसकी आँखें खोल दीं। उसने एक नई दुनिया ही सचमुच देखी जिसकी कभी आशा भी न थी। मगर इससे भी निरालापन तीसरे अध्याय में और दूसरे के मध्य में भी उसने कर्म के बारे में पाया। जानें कहाँ की अलौकिक बातें और खूबियाँ

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मालूम हुई! खासकर कर्म का जो सर्वांग रहस्य उसके सामने पूरे ब्योरे के साथ आ गया उसका तो उसे सारे पोथी पुराणों और वैदिक ग्रंथों के मंथन से भी आभास तक न मिल सका था। इस मामूली से कर्म के भीतर इतनी बारीकियाँ छिपी हैं यह जानके स्वभावतः वह आश्चर्यचकितसा हो रहा है यह बात कृष्ण भी ताड़ गये थे। वह सोचता था कि इसमें अभी जानें और कितनी बातें होंगी। मगर उसे ताज्जुब था कि इतनी महत्वपूर्ण बातें लोगों को अबतक मालूम क्यों न थीं! यदि किसी एक को भी मालूम होतीं तो वह जरूर ही कह-सुन गया होता, लिख-पढ़ गया होता। हो न हो, यह एकदम नई बातें कृष्ण के ही अलौकिक मस्तिष्क की उपज हैं— बिल्कुल ही ताजी और नई हैं!

इससे जहाँ एक ओर गर्व और फख्र हो सकता था कि भगवान ने मेरे ऊपर बड़ी ही कृपा की जो सारा रहस्य समझाया; अतः मैं धन्य हूँ। तहाँ दूसरी ओर इस बातकी भी गुंजाइश थी कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि केवल युद्ध में जुंझाने के ही लिए नई-नई युक्तियाँ, जो आजतक देखी-सुनी भी न गई, पेश की जा रही हैं। जब इस तरह की बातें कहिये-सुनिये तो आम तौरसे ऐसे खयाल अक्सर हुआ करते हैं कि देखो न, कितना गुरुघंटाल है कि युक्तियों के नये जाल में फाँस के अपना काम निकाल लेना चाहता है! यह भी बात है कि यदि धर्म-कर्म के मामले में लोगों को यह पता लग जाय कि एकदम नई बात कही जाती है जो पहले कभी आई न थी और प्रचलित धारणा या रीति-रिवाज के खिलाफ है, तो लोग एकदम भड़क उठते हैं। यह चीज हमेशा ही देखी गई है। इसलिये कृष्ण के इस अनूठे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उपदेश में भी इसकी संभावना थी और काफी थी। कृष्ण जैसे विज्ञ महापुरुष को इसे ताड़ते देर भी नहीं लग सकती थी। यदि इससे बचने के लिये कहा जाता कि नहीं नहीं, यह तो पुरानी ही बात है, प्राचीनतम है, जिसे कृष्ण ने फिर दुहराया है, तो शंका हो सकती थी कि उन्हें यह मालूम कैसे हो सकी? जब साधारणतः इसका उपदेश होता जाता ही नहीं और न चर्चा ही सुनी जाती है—जब यह लापता है, तो एकाएक कृष्ण को मालूम कैसे हो गई? यह भी तो दिमाग में आ सकने वाली बात नहीं है कि उन्हें योंही विदित हो गई।

पूर्ण व्यवहारकुशल होने के नाते, और अर्जुन की भावभंगी को देखकर भी, कृष्ण के मन में स्वयमेव ये सारे खयाल आ जाने जरूरी थे। आ गये भी। इसीलिये उनने अर्जुन को प्रश्न करने का मौका तक नहीं देकर स्वयमेव चौथे अध्याय के आरंभ के दस श्लोकों में इस बात का पूरा खुलासा कर दिया। असल में प्रश्न के उत्तर देने पर वह मजा नहीं आता जो बिना पूछे ही अपने मन से ताड़ के उत्तर देने में आता है। इससे एक तो सुनने वाला बाग-बाग हो जाता है। उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता कि जो विचार उसे खटक रहे थे उनकी पूरी सफाई हो गई। इसी के साथ इससे उपदेशक की पहुँच और पूर्ण योग्यता पर भी उसे विश्वास हो जाता है। यह भी होता है कि सुनने वाले के मन में खयाल न भी उठें। ऐसी दशा में इनका उत्तर तत्काल न दिया जाने पर आगे चल के यही प्रश्न उठ सकते और विषय को कम से कम किरकिरा तो जरूर बना दे सकते हैं। क्योंकि बहुत संभव है कि उस उपदेश के न रहने

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पर दूसरे लोग सारी बातों का रहस्य पूर्णतया हृदयंगम न कर सकने के कारण उन खयालों और प्रश्नों के यथार्थ और दिल में बैठ जाने वाले उत्तर न दे सकें। इसीलिये बिना कहे सुने ही—

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥

श्रीभगवान ने कहा—मैंने (खुद) विवस्वान्—सूर्य—को (सृष्टि के आरम्भ काल में ही) इस चिरस्थायी योग का उपदेश दिया था। (उसके बाद कालान्तर में) विवस्वान् ने मनु को (इसे) बताया था और मनु ने इक्ष्वाकु को।१।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥२॥

हे परन्तप, इस प्रकार परम्परा—गुरुशिष्य प्रणाली—से चले आनेवाले इस योग को राजर्षि लोग (जरूर) जानते थे। (मगर) वही योग दर्म्यान वाले लम्बे समय के चलते यहाँ लापता हो गया था।२।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥

यह वही प्राचीन योग है जिसे आज मैंने तुमसे कहा है। (क्योंकि) तुम मेरे साथी और भक्त (दोनों ही) हो (और) यह भी अत्यन्त गोपनीय चीज है।३।

अर्जुन उवाच।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्जुन ने पूछा—आपका न्म तो इधर हाल में ही हुआ है और विवस्वान तो बहुत पहले पैदा हुए थे। (तब) कैसे मानूँ कि आपने ही शुरू में (उन्हें यह चीज) बताई थी? ।४।

श्रीभगवानुवाच।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥५॥

श्री भगवान ने उत्तर दिया—हे अर्जुन, हे परन्तप, मेरे और तुम्हारे भी बहुतेरे जन्म हो चुके हैं। मैं उन सबों को ही जानता हूँ। (हाँ) तुम नहीं जानते ।५।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥६॥

बेशक, मैं जन्म-रहित हूँ मेरी आत्मा निर्विकार है और मैं सभी सत्ताधारियों का शासन करनेवाला भी हूँ। (ताहम) अपनी प्रकृति के नियमों के अनुसार ही मैं अपनी माया से ही जन्म लेता हूँ ।६।

यदायदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥७॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥८॥

हे भारत, जभी-जभी धर्म का ह्रास या खात्मा होता है और अधर्म की वृद्धि हो जाती है तभी-तभी मैं अपना शरीर बनाता हूँ।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(इसीलिये) भले लोगों की रक्षा, बुरे लोगों के नाश और धर्म की जड़ को मजबूत करने के लिये मुझे समय-समय पर ज़न्म लेना ही होता है ।७।८।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।९।।

हे अर्जुन, हमारे इस अलौकिक जन्म और कर्म को जो इसी तरह—मेरी ही तरह—ठीक-ठीक साक्षात् अनुभव करता है वह शरीर को छोड़ के—मरने पर—फिर जन्म नहीं लेता (और) मुझी में मिल जाता है—मेरा ही रूप बन जाता है ।९।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ।।१०।।

(यह कोई नई बात नहीं है । पहले भी) जिनके राग, भय एवं क्रोध निर्मूल हो गए थे, जो मुझ आत्मा के सिवाय और की पर्वा न करके आत्मा में ही रम चुके थे (और इस तरह) जो ज्ञानरूपी तप के प्रभाव से पवित्र हो चुके थे ऐसे बहुत से लोग मेरा स्वरूप—परमात्मा या ब्रह्म—बन चुके हैं ।१०।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।११।।

हे पार्थ, जो लोग जिस दृष्टि से मेरे निकट आते हैं—मुझे जानते मानते—हैं मैं (भी) उन्हें वैसा ही मानता-जानता हूँ । (यह समझ लो कि) सभी मनुष्य मेरे ही रास्ते पर चलते हैं ।११।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ।।१२।।

इस संसार में जो कर्मों की सिद्धि चाहते हैं वह (सभी प्रकार के) देवताओं का यज्ञपूजन करते हैं । क्योंकि इस मनुष्य लोक में कर्मों के फलों की प्राप्ति जल्दी ही होती है ।१२।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ।।१३।।

चारों वर्णों को मैंने ही गुणों और कर्मों के बँटवारे के अनुकूल ही बनाया है । (लेकिन) इनका बनाने वाला होता हुआ भी मैं निर्विकार और अकर्त्ता हूँ, ऐसा जान लो ।१३।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ।।१४।।

(क्योंकि) न तो मुझमें कर्म चिपकते ही हैं और न मुझे उन कर्मों के फलों की आकांक्षा ही है । (फिर मुझे इनसे ताल्लुक ही क्या ? यही नहीं;) जो कोई दूसरा भी मुझे इसी तरह साक्षात्कार कर लेता है वह भी कर्मों से (हर्गिज) बँध नहीं सकता ।१४।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।।१५।।

(यही कारण है कि) मुक्ति चाहने वाले पुराने लोगों ने भी ऐसा ही समझके कर्म किया था । इसलिए तुम भी पुराने लोगों के द्वारा किए गए इस अत्यन्त प्राचीन कर्म को ही करो ।१५।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६॥

कर्म क्या है (और) अकर्म क्या है इस सम्बन्ध में अलौकिक विद्वानों को भी घपले में पड़ जाना पड़ा है। इसीलिए तुम्हें कर्म (की सारी बातें और बारीकियाँ) बता दूँगा जिन्हें जानकर गलती और बुराई से बच सकोगे।१६।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

कर्म के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ जानना जरूरी है और विकर्म के सम्बन्ध में भी। (इसी तरह) अकर्म—कर्म त्याग—के सम्बन्ध में भी अनेक बातें जानने को हैं। क्योंकि कर्म की बात बड़ीपेचीदा है।१७।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

जो आदमी कर्म में ही अकर्म—कर्म त्याग एवं विकर्म—(भी) देखता है और अकर्म—कर्म त्याग एवं विकर्म—में ही कर्म (भी), वही सब लोगों में बुद्धिमान है और योगी है और वही सब कुछ कर सकता है।१८।

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥१९॥

जिस (आदमी) के सभी काम कामना तथा फल आदि की आसक्ति के बिना ही होते हैं, (इसीलिए) जिसने ज्ञानरूपी आग में सभी कर्म जला दिये हैं, विद्वान लोग उसी को पंडित कहते हैं।१९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥२०॥

(क्योंकि) ऐसा आदमी कर्मों और उनके फलों की आशक्ति को मिटा के बेपर्वाह और हमेशा मस्त रहता है। (इसीलिए वह कर्मों को करता हुआ भी (दरअसल) कुछ भी नहीं करता है।२।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शरीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।२१॥

जो सभी इच्छा-आकांक्षाओं को लात मार चुका है, जिसने मन और बुद्धि को अपने काबू में कर लिया है (और) जिसने सभी डल्ले-पल्ले से नाता तोड़ लिया है, (ऐसा आदमी) केवल देह या इन्द्रियों से ही कर्मों को करता हुआ भी पाप और बुराई के पास जाता तक नहीं।२१।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबध्यते ॥२२॥

योंही जो कुछ भी मिल जाये उसी से जो सन्तुष्ट हो, रागद्वेष—हर्ष-विषाद—काम-क्रोधादि द्वन्द्वों से जो बहुत दूर हो गया हो, जिसमें वैर-विरोध या दूसरों की सफलता से होनेवाली जलन न हो और जिसके दिल पर काम के पूरा होने या न होने का कोई प्रभाव न पड़े वह आदमी सभी कर्मों को करके भी बन्धन में हर्गिज नहीं पड़ता।२२।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

जो आसक्ति शून्य है, जो सभी बन्धनों से रहित है, (इसीलिए) जिसकी बुद्धि आत्मज्ञान में ही डूबी है—जो स्थितप्रज्ञ है—और जो (केवल) यज्ञ के ही लिए कर्म करता है उसके कर्म जड़-मूल से खत्म हो जाते हैं ।२३।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।२४॥

(जिस यज्ञ में ऐसी भावना है कि) आहुति आदि के साधन स्रुव आदि ब्रह्म ही हैं, घृतादि हवन के पदार्थ भी ब्रह्म हैं, ब्रह्मरूपी अग्नि में ब्रह्मरूपी यजमान ब्रह्मरूपी हवनक्रिया करता है, उस समूची यज्ञात्मक क्रिया को ब्रह्म का रूप मिल जाने से वह पूर्ण समाधि ही हो गई। इसलिए उससे ब्रह्म को ही प्राप्ति होती है ।२४।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

दूसरे योगी इन्द्र आदि देवताओं के ही यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं। कुछ और लोग ब्रह्मरूपी अग्नि में ही देहधारी आत्मा का हवन ज्यों का त्यों कर देते हैं ।२५।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

(चौथे प्रकार के) कुछलोग श्रोत्र आदि इन्द्रियों का हवन संयमरूपी आग में करते हैं। (पाचवें) दलवाले शब्द आदि विषयों का हवन ज्ञान इन्द्रियरूपी अग्नि में ही करते हैं।२६।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयम योगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥२७।

(छठे प्रकार के) लोग सभी इन्द्रियों की तथा प्राण की भी सभी क्रियाओं का हवन मन के संयमरूपी अग्नि में, जो ज्ञान के द्वारा खूब धौंकी जा चुकी है, करते हैं।२७।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योग यज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ।२८॥

दूसरे भी कल्याणार्थ यत्न करने वाले लोग हैं जिनके व्रत या यज्ञों के नियम बड़े ही सख्त हैं। (ये पाँच दलों में विभक्त हैं और वे है) अन्नादि पदार्थों से यज्ञ करने वाले, तपरूपी यज्ञ के करने वाले, अष्टांग योगरूपी यज्ञ करने वाले, सद्ग्रन्थों के पाठरूपी यज्ञ के कर्त्ता और ज्ञान यज्ञ के करने वाले।२८।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगतीरुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२६॥

(तीन तरह के और भी लोग हैं जो यज्ञ करते हैं और उनमें) एक तो अपान में प्राण का ही हवन यानी पूरक करते हैं। दूसरे प्राण में ही अपान का हवन यानी रेचक करते हैं। तीसरे प्राण और अपान दोनों की क्रिया रोक के कुम्भक में ही लगे रहते हैं।२६।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

(पन्द्रहवें प्रकार के) कुछ और भी हैं जो खान-पान आदि पर सख्त संयम करके इन्द्रियों की क्रियाओं को प्राण की क्रियाओं में ही हवन कर देते हैं। (इस तरह) ये सभी यज्ञ करने वाले इन्हीं यज्ञों के द्वारा (अपने दिल दिमाग की सभी) गन्दगियों को धो डालते हैं (और) यज्ञ शिष्ट—यज्ञ के बाद बचे हुये अमृत को ही भोगते हुये सनातन—नित्य—ब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं। हे कुरुसत्तम,—कुरुवंश के दीपक,—जो यज्ञ नहीं करता उसका तो काम यहीं नहीं चल सकता। परलोक का तो कहना ही क्या ? ३०।३१।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान् विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

इस प्रकार अनेक तरह से यज्ञ वेद में प्रमुख रूप से कहे गये हैं। कर्मों से ही वे सभी तैयार होते हैं ऐसा जान लो; (क्योंकि) ऐसा जानने से ही मुक्त होगे ।३२।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

हे परन्तप, घृतादि भौतिक पदार्थों से किये जानेवाले यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ कहीं अच्छा है। (क्योंकि) हे पार्थ, (आखिर) पशु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कर्मों का अन्तिम ध्येय ज्ञान ही तो है और ज्ञान से ही कर्मों का खात्मा भी होता है।३३।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

तो यह याद रखो, नम्रता पूर्वक शरण में जाने, (यथाशक्ति) सेवा करने (और अवसर पाके) पूछने पर ही तत्त्वदर्शी ज्ञानी जन तुम्हें ज्ञान का उपदेश करेंगे।३४।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

हे पांडव जिस ज्ञान को हासिल कर लेने से तुम्हें ऐसा मोह न होगा (और) जिसके चलते सभी पदार्थों को अपने आप में देखोगे और मुझमें भी।३५।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥३६॥

अगर तुम सभी पापियों से कहीं बढ़-चढ़के भी पापी हो (तो भी) सभी पापों—पाप समुद्र—को इस ज्ञान की नाव से ही पार कर जाओगे।३६।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

हे अर्जुन, जिस तरह धक्धक् जलने वाली आग समूचा इंधन (बात की बात में ही) भस्म कर डालती है। उसी तरह ज्ञानरूपी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आग भी सभी कर्मों को भस्म कर देती है ।३७।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥३८॥

क्योंकि (वस्तुतः) इस दुनियाँ में ज्ञान से बढ़ के पवित्र—शुद्ध करने वाली—चीज दूसरी हई नहीं। कर्मों के फलस्वरूप जिसका अन्तःकरण—मन—शुद्ध हो गया है वही इसे समय पाके अपने में ही हासिल कर लेता है। (बाहर जाने या ढूँढने की जरूरत नहीं होती) ।३८।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

जो श्रद्धा वाला है, जिसने अपनी इन्द्रियों को बखूबी काबू में कर लिया है और जो इस बात में दिन-रात मुस्तैद है, उसी को ज्ञान होता है। ज्ञान हो जाने पर अखड शान्ति का अनुभव फौरन ही होने लगता है ।३९।

अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

(विपरीत इसके) जो कुछ जानता ही नहीं, जिसे श्रद्धा भी नहीं है और जिसके मन में संशय ने घर कर लिया है वह चौपट ही हो जाता है। (क्योंकि) हर बात में संशय करने वाले का न तो यहीं काम चल सकता है और न परलोक में ही। उसे चैन तो कभी मिलता ही नहीं ।४०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

योगःसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्तिधनंजय ।

हे धनंजय, जिसने कर्म करते-करते अन्त में उसके संन्यास की दशा प्राप्त कर ली है, जिसने आत्म ज्ञान के बल से संशय को खत्म करदिय है और इसीलिये) जिसने आत्मा को पा लिया है कर्म उसे बन्धन में डाल नहीं सकते ।४१।

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ।।४२।।

इसलिये हे भारत, अज्ञान से पैदा होने वाले (और) हृदय में ही घर बनाके जमने वाले इस संशय (रूपी प्रचंड शत्रु) को आत्मा के ज्ञान रूपी तलवार से कत्ल करके उठ खड़े हो (और युद्धात्मक) कर्म करो ।४२।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोध्यायः ।।४।।



ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पाँचवाँ अध्याय

चौथे अध्याय में जो कुछ भी कहा गया है वह अर्जुन के और दूसरों के भी बड़े ही कामका है। इसमें शक की जगह नहीं है। अर्जुन चुपचाप ध्यानपूर्वक इसीलिये सुनता भी रहा। कर्म-अकर्म के विशद निरूपण और ज्ञान के स्वरूप के प्रतिपादन ने उसे मुग्ध कर दिया था। अन्त में जो यह कहा गया है कि कर्मों के करते-करते संन्यास प्राप्त कर लेने पर ही ज्ञान होता, आत्मा की प्राप्ति होती और कर्मों के बन्धन से छुटकारा मिल जाता है, उससे भी उसे पूरा संतोष हुआ। फलतः भीतर ही भीतर अपने तात्कालिक कर्त्तव्य की उधेड़बुन वह करने ही लगा था कि एकाएक निराली बात अध्याय के आखिरी श्लोक में कह दी गई! उसे तो यह देखना था कि मैं किस दशा में हूँ। आया मुझे अभी कर्म ही करना चाहिये, या अब मेरी योग्यता ऐसी हो गई है कि संन्यास ले लूँ। क्योंकि उपदेश सुनने के बाद उसे सोचना-विचारना और परिस्थिति के अनुसार ही काम करना था। वह इसी उधेड़बुन में लगा भी था। तब तक चटपट आज्ञा हुई कि खड़े हो जाओ और युद्धात्मक कर्म में जुट जाओ।

इससे उसके मन में खलबली मचना और सन्देह होना जरूरी था। क्योंकि कृष्ण को क्या पता कि वह किस दशा में है, उसकी योग्यता क्या है? उसका पता तो आत्मनिरीक्षण के बाद अर्जुन को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ही लग सकता था। निरीक्षण की कसौटी भी उसे चौथे अध्याय में मिली ही थी। फिर कृष्ण को यह कहने की क्या जरूरत थी कि तुम्हें तो कर्म ही करना है, न कि संन्यास लेना? तब तो उपदेश की कोई जरूरत थी ही नहीं। किन्तु सीधे आज्ञा देनी थी, फौजी फर्मान जारी कर देना था कि लड़ना होगा। मगर जब उपदेश हो रहा है और तर्क-दलील के साथ वारबार कहा जा रहा है कि जानो, समझो, सोचो, विचारो, 'बोद्धव्यम्, विद्धि,' तब यह क्यों हुआ? तब यह आज्ञा कैसी कि लड़ो? तब तो यह उपदेश का नाटक ही माना जायगा न? कमसे कम इस प्रकार का खयाल उसके दिमाग में बिजली की तरह एकाएक दौड़ जाना स्वाभाविक था। फलतः कृष्ण से उसका चटपट प्रश्न करना जरूरी हो गया कि एक ही साँस में दोनों बातें क्यों कहते हैं? या तो कर्म ही कहिये और बात खत्म कीजिये; या सन्यास का ही बात कहिये और सोचने दीजिये कि आया मैं उसका अभी अधिकारी हो पाया हूँ या नहीं। यह झमेला ठीक नहीं। साफ-साफ बोलिये। इसीलिये —

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥१॥

अर्जुन ने पूछा—हे कृष्ण, आप (पहले तो) कर्मों के संन्यास की बात कहते हैं और (फौरन ही) उन्हें करने को कहते हैं! (यह क्या?) इन दोनों में जो अच्छा हो वही मुझे पक्का-पक्की बताइए।१।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्री भगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥२॥

श्री भगवान ने उत्तर दिया—(बेशक), कर्मों का संन्यास और उनका करना (ये दोनों ही) परम कल्याण—मोक्ष—के देने वाले हैं। लेकिन इनमें संन्यास से योग—कर्मों का करना—ही अच्छा है।२।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥३॥

हे महाबाहु, उसी को सदा संन्यासी मानना चाहिए जिसे न राग है, न द्वेष—जो न कुछ हटाना चाहता है, न कुछ लेना। क्योंकि जो (इस प्रकार) राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित है वही आसानी से बन्धनों से छुटकारा पा जाता है।३।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥४॥

सांख्य—संन्यास (और) योग को—दोनों को—दो चीजें नासमझ लोग (ही) मानते हैं। (क्योंकि) यदि एक पर भी अच्छी तरह कायम रहे तो दोनों का फल मिली जाता है।४।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जो स्थान संन्यास से मिलता है वही योग से भी। (इसलिए इस तरह) सन्यास तथा योग को जो एक समझता है (दरअसल) वही समझदार है ।५।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥६॥

हे महाबाहु, बिना योग के संन्यास की सिद्धि—प्राप्ति—असंभव है। (विपरीत इसके) जो योगयुक्त है अर्थात् कर्म करता है उसे संन्यास की प्राप्ति शीघ्र ही होती है ।६।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

कर्म करते-करते जिसका मन या अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल और इसीलिए अपने काबू में हो गया है (और उसके फल स्वरूप) इन्द्रियाँ भी काबू में है वह खुद सभी सत्ताधारी पदार्थों को आत्मा ही हो जाता है। (इसीलिए) कर्म करते हुए भी वह उसमें सटता नहीं ।७।

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन् ॥९॥

(इस प्रकार) पूर्ण अवस्था को प्राप्त योगी तत्त्वज्ञानी हो जाने पर देखता, सुनता, छूता, सूँघता, खाता, चलता, सोता, साँस लेता, बोलता, मल-मूत्र त्यागता, पकड़ता और पलकें मारता हुआ भी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

यही धारणा रखता है कि यह तो इन्द्रियाँ ही अपने कामों में लगी है; मैं तो कुछ भी करता-कराता हूँ नहीं ।८।९।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥१०॥

(लेकिन जो इस तरह पहुँचा हुआ न भी हो ऐसा भी) जो कोई भगवान को समर्पण करके और हाय-हाय तथा आसक्ति छोड़ के कर्मों को करता है वह (भी) पाप से वैसे ही नहीं सटता जैसे कमल का पत्ता पानी में रहके भी पानी से नहीं सटता ।१०।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

(क्योंकि) कर्म करने वाले समझदारी से काम लेके और आसक्ति एवं हाय-तोबा को छोड़के मन की शुद्धि के लिए केवल शरीर से, केवल इन्द्रियों से और केवल मन से कर्म करते रहते हैं ।११।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥

(इस तरह) समझदार और मन पर काबू रखने वाले कर्मों के फलों से नाता तोड़के ब्रह्मनिष्ठा—जीवनमुक्ति—की शान्ति हासिल कर लेते हैं। (विपरीत उनके) जो लोग समझदार और मन को दबोचनेवाले नहीं हैं वे फलों में लिपटके जन्म-मरण आदि के बन्धनों में फँसते हैं ।१२।

सर्वकर्माणिमनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मन और इन्द्रियों को अपने अधीन रखनेवाला देह का मालिक जीव मन के द्वारा विवेक से सभी कर्मों का संन्यास करके नौ दरवाजे वाले पुर में आराम से रहता है (और) न कुछ करता है, न करवाता है।१३।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥१४॥

(ऐसी दशा में) यह जीव सबका मालिक बन जाने पर न तो अपने आपमें कर्म करने की भावना लाता है, न लोगों से ही कर्म करवाता या करवाने का खयाल करता है और न कर्मों के फलों से सम्बन्ध या ताल्लुक ही पैदा करता है। (किन्तु) यह सब कुछ प्रकृति के गुणों का ही पसारा है।१४।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

(इसलिए) सर्वत्र फैला हुआ वह जीव न तो किसी के पुण्य का साथी या भागीदार है और न पाप का। (दरअसल बात यह है कि) अज्ञान ने ज्ञान को छिपा दिया है (जिससे लोग बात समझ सकते नहीं। फलतः सभी) जीव भ्रम में पड़के ही ऐसा मानते हैं कि (हम पुण्य-पाप के भागी हैं)।१५।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

(लेकिन) जिनकी आत्मा का वह अज्ञान ज्ञान ने मिटा दिया है उन्हें तो वही ज्ञान उस शुद्ध आत्मा को सूर्य की तरह प्रकाशित कर देता है। (फलतः वे अपने को पुण्य-पाप के भागी नहीं मानते)।१६।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

जिनको बुद्धि उसी आत्मा में लग चुकी है, मन भी वहीं लगा है, उसी में जो खुद रम गये हैं और उससे अन्य किसी की पर्वा नहीं करते, ऐसे ही लोग ज्ञान से समस्त पापों को बखूबी धोके जन्म-मरण रहित पद—मुक्ति—प्राप्त कर लेते हैं ।१७।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ।१८।
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ।१९।

पंडित लोग विद्या एवं सदाचरण से युक्त ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और कुत्ता खा जाने वाले प्राणी में (केवल) सम नामक वस्तु को ही देखते हैं—समदर्शी होते हैं । (इस तरह) जिनका मन इस साम्यावस्था में डँट गया—जम गया—वह तो जीते ही जी सृष्टि—जन्म-मरण—पर विजय पा जाते हैं—इससे छुटकारा पा जाते हैं । क्योंकि निर्विकार एकरस ब्रह्म ही सम है। इसलिए वे ब्रह्मनिष्ठ हो जाते हैं ।१८।१९।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

(इसीलिए) स्थिर बुद्धिवाला, हर तरह के मोह से रहित (जो) ब्रह्मनिष्ठ आत्मज्ञानी हैं (वह) न तो प्रिय पदार्थ मिलने से खुशी के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मारे लोट-पोट होता है और न अप्रिय मिलने से घबराता है—सर पीटता है ।२०।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ।।२१।।

भौतिक पदार्थों में (इस तरह) मन न रमने पर ब्रह्म में ही जिसका मन जम जाता है वह पुरुष जब आत्मा में ही सुख का अनुभव करने लगता है (तो) अक्षय सुख को प्राप्त कर लेता है ।२१।

ये हि संस्पर्शजाभोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।२२।।

क्योंकि भौतिक पदार्थों से जो आनन्द मिलता है वह (तो) आने-जाने वाला—अस्थायी—होने से (अन्त में) दुःख का ही कारण बन जाता है। इसीलिए समझदार लोग उसमें कभी नहीं फँसते हे कौन्तेय ।२२।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ।।२३।।

जो मनुष्य मरने के पहले ही इसी शरीर में काम और क्रोध के वेग को दबा देता है वही योगी है, वही सुखी है ।२३।

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।।२४।।

जिस योगी को अपने मेंही आनन्द मिले तथा अपने में ही प्रकाश मिले (और) जिसका मन अपने ही में रम जाय वही ब्रह्म रूप होके निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त करता है ।२४।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

जिनके मन काबू में हैं, जिनकी दुबिधायें मिट चुकी हैं, जिनके सभी मैल धुल चुके हैं (और) जो सभी पदार्थों के हित में निमग्न हैं ऐसे ही विवेकी निर्वाण ब्रह्म को हासिल करते हैं।२५।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्त्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

जिनने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, जिनके मन काबू में हैं (और इसीलिए) जो काम-क्रोध से शून्य हैं, ऐसे यतियों—संन्यासियों—को दोनों दशा में—जीते जी और मरने पर भी—निर्वाण ब्रह्म प्राप्त ही प्राप्त है।२६।

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

बाहरी विषयों को बाहर ही रोकके, दोनों दृष्टियों को भौंके बीच में ही टिकाके और नासिका के रास्ते बाहर-भीतर जाने-आने-वाले प्राण-अपान को मिलाके—कुम्भक करके—एकमात्र मोक्ष यानी आत्मा में ही खयाल जमाये हुये जो मननशील संन्यासी अपने मन और बुद्धि को बखूबी काबू में रखता तथा इच्छा, भय और क्रोध से सर्वथा नाता तोड़ लेता है वह हमेशा ही मुक्त है।२७।२८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥२६॥

सब यज्ञों और तपस्याओं के भोगनेवाले, सबलोगों के बडे से बड़े शासक और सबों के कल्याण चाहने वाले मुझ परमात्मा को जानकर ही (वह) शान्ति प्राप्त करता है।२६।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे संन्यास योगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥



ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

छठाँ अध्याय

पाँचवें अध्याय में जिस संन्यास का विशेष निरूपण आया है और सच्चे संन्यासी की मनोवृत्तियों का जो विशेष विवरण दिया गया है उसी को कुछ आचार्यों ने प्रकृतिगर्भ या प्राकृतिक अवस्था भी कहा है। काम-क्रोध, राग-द्वेषादिका सर्वथा त्याग, भीतर ही मस्तीका अनुभव, सबके हित की कामना आदि बहुत से लक्षण पूर्ण संन्यासी के बताये गये हैं। माया-ममता का तो उनमें नाम भी नहीं होता है। मिट्टी से लेकर हीरेतक एवं कुत्ते से लेकर विद्या-सदाचार-सम्पन्न ब्राह्मण तक में उन्हें कोई विभेद नजर नहीं आके सर्वत्र एकरस आत्मा और ब्रह्मका ही दर्शन होता है, यही नजारा दीखता है। यह तो आसान बात है नहीं, ऐसा ख्याल किसी को भी हो सकता है जिसने गौर से सारी बातें सुनी हों। इसीलिये उसके मनमें स्वभावतः यह जिज्ञासा पैदा हो सकती है कि ऐसा आदर्श संन्यास कैसे प्राप्त होगा ? वह यह बात जरूर ही जानना चाहेगा।

अन्त के २७, २८ श्लोकों में जो दिग्दर्शन के रूप में इस संन्यासावस्था की प्राप्ति के साधनों का वर्णन आया है उससे यह जिज्ञासा और भी तेज हो सकती है, न कि शान्त होगी। एक तो यह बात अत्यन्त संक्षिप्त रह गई। दूसरे बहुत ही कठिन है। प्राणायाम या दृष्टि को टिकाने की बात कहने में जितनी आसान है समझने और करने में उतनी ही कठिन। जब क इसका पूरा ब्योरा न मालूम हो जाय और यह भी ज्ञात न हो जाय कि इस साधन में सफलता होने की पहचान क्या है, तबतक काम चल सकता भी नहीं। यह काम कब, कहाँ, कैसे किया जाय और करनेवालों की रहन-सहन वगैरह कैसी हो, आदि बातें भी जानना निहायत जरूरी हैं। इन्हीं के साथ यह भी जानना आवश्यक है कि आया किसी भी दशा में कर्मों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

का स्वरूपतः त्याग या संन्यास भी जरूरी है या नहीं। यह इसलिये कि छठें में सभी साधनों के बताने के समय यदि उन्हीं के साथ नित्य-नैमित्तिक कर्मों के बन्द कर देने—संन्यास लेने—की बात न आये तो समझेंगे कि यह कोई वैसी जरूरी चीज नहीं है। कर्मों के स्वरूपतः त्याग की जरूरत किस दशा में कैसे है, यह बात ब्योरे के रूप में पाँचवें अध्याय में आई भी नहीं है। परन्तु कर्म-अकर्म के इस महान झमेले में है यह निहायत जरूरी चीज। इसलिये इसको भी जिज्ञासा का अर्जुन के मन में पैदा होना जरूरी था।

किन्तु अर्जुन प्रश्न करे वह मौका खुद कृष्ण देना नहीं चाहते थे। क्योंकि ये बातें कुछ ऐसी-वैसी तो नहीं हैं कि ध्यान में न आयें। जिस चीज का उपदेश वह कर रहे थे ये बातें उसके प्राणस्वरूप ही कही जायें तो भी कोई अत्युक्ति नहीं हो सकती है। जबतक इनपर पूरा प्रकाश न डाला जाय, आत्मब्रह्मदर्शन, आदि का निरूपण अधूरे का अधूरा ही रह जायगा। इसीलिये कृष्ण ने बिना पूछे ही स्वयमेव इनकी सख्त जरूरत महसूस कर इन्हें उपदेश करना शुरू कर दिया। फलतः यदि छठें अध्याय का विषय ध्यानयोग माना गया है तो ठीक ही है। समूचे का समूचा अध्याय हरेक पहलू से इसी चीज पर प्रकाश डालता है। पातंजल योग और समाधि भी ध्यान के भीतर ही आ जानेवाली चीजें हैं। लेकिन कृष्ण यह अनुभव भी कर रहे थे कि यदि अथ से इतितक इसी ध्यान और स्वरूपतः कर्मत्याग की ही बात करेंगे तो लोगों को धोखा हो सकता है। परिणामस्वरूप इसके सामने कर्म करने की महत्ता वे भूल सकते हैं। क्योंकि ध्यान-वान के बारे में लोगों की कुछ ऐसी ही उँची धारणा पाई जाती है कि और बातें इसके सामने तुच्छ मानते हैं। इसीलिये शुरू में कर्मों के करने पर जोर देके ही आगे बढ़ते हैं। इस तरह बहुत बड़े धोखे तथा खतरे से जनसाधारण को बचा लेते हैं। इन्हीं सब विचारों से—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः ॥१॥

श्रीभगवान बोले—जो कोई भी कर्मों और उनके फलों की पर्वा न करके (केवल) कर्त्तव्य समझ उन्हें करता रहता है वही संन्यासी भी है और योगी भी। (न कि कर्मों के साधन) अग्नि (आदि) को और (खुद) कर्मों को ही छोड़ देनेवाला ।१।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

हे पांडव, जिसे संन्यास कहा गया है उसे योग ही जानो। क्योंकि जो कोई सभी संकल्पों को त्याग न दे वह योगी हो नहीं सकता है ।२।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

(कोई भी) मननशील योग—ज्ञान या समाधि—में जाने एवं उसे प्राप्त करने की इच्छावाला बन जाय इसका कारण कर्म है—इसी के लिये कर्म करने की जरूरत है। उसी को (आगे चल के) ज्ञान तथा समाधि में आरूढ़—पक्का—बना देने के लिये ही कर्मों के त्याग की जरूरत है ।३।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥४॥

क्योंकि जब सभी संकल्पों का त्याग कर देनेवाला मनुष्य न तो इन्द्रियों के विषयों में और न कर्मों में ही चिपकता है तभी वह योगारूढ़ माना जाता है ।४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्त्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

अपना उद्धार खुदबखुद करना चाहिये। आत्मा को—अपने आपको—संकट में कभी न डालना—कभी नीचे न गिराना—चाहिये। क्योंकि अपना मददगार या दुश्मन स्वयं हर आदमी ही होता है। जिसने मन पर काबू नहीं किया शत्रुता के मौके पर (वही) मन (उसके) शत्रु का काम करता है।५।६।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥७॥

जिसने मन को जीत लिया है (और इसीलिये) जिसका अन्तःकरण अत्यन्त शान्त है, उसे शीत-उष्ण, सुख दुख और मान-अपमान की दशा में (भी) बराबर समाधि में परमात्मा का ही साक्षात्कार होता रहता है-उसकी मस्ती बराबर बनी रहती है, चाहे कुछ हो।७।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥८॥

ज्ञान और विज्ञान की प्राप्ति से जिसका मन तृप्त है—मस्त है, जो किसी भी दशा में विचलित नहीं होता, जिसकी (सभी) इन्द्रियाँ अपने वश में हैं (और इसीलिए) जिसके लिए मिट्टी का ढ़ेला, पत्थर (और) सोना सभी एक से ही हैं, ऐसा ही योगी युक्त या योगारूढ़ कहा जाता है।८।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

सुहृद, मित्र, शत्रु, तटस्थ, मध्यस्थ, प्रत्यक्ष-अपकारी, सम्बन्धी, साधु और पापी—सबों—में जिसकी समबुद्धि हैं—इनमें किसी की ओर जो खिंच जाता नहीं—वही श्रेष्ठ है।९।

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

ध्यान करने वाला संन्यासी निरन्तर एकान्त स्थान में अकेला ही रहके बुद्धि और मन पर कब्जा रखे हुए, बेफिक्र सारा लबाजिम छोड़के ही मन को एकाग्र करने का यत्न करे।१०।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

जो न तो बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा हो, जिसमें क्रमशः कुश, मृगचर्म और वस्त्र एक के ऊपर एक पड़े हों और जो हिले-डोले न ऐसा निजी आसन (वहाँ) किसो पवित्र स्थान पर बिछाके—।११।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

मन और इन्द्रियों की बाहरी क्रियाओं को रोके हुए मन को एकाग्र करके उसे शुद्ध करने के ही लिए उसी आसन पर बैठे (तथा) ध्यान (एवं) समाधि का अभ्यास करे।१२।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ।।१४।।

धड़, सर और गर्दन तीनों ही सीधे—तने—और निश्चल रखे हुए घबराहट छोड़ के बैठे, अपनी नासिका के अग्र भाग पर ही दृष्टि जमाये रहे और इधर-उधर न देखे। मन की बेचैनी बिल्कुल न हो, डर-भय जरा भी न हो, (खान-पान आदि में) ब्रह्मचारी के ही नियमों का पूरा पालन करे। मुझमें ही मन लगाये तथा मुझको ही सबकुछ समझे हुये मन को भरपूर काबू में करके समाधि में बैठे।१३।१४।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।

शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।।१५।

इस प्रकार निरन्तर आत्मा में मन को जोड़ता हुआ उसे सोलह आने काबू में कर लेने वाला योगी उस ब्रह्मनिष्ठा रूपी शान्ति को प्राप्त कर लेता है, जिसका अन्तिम परिणाम आवागमन से छुटकारा है।१५।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः ।

न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।१६।।

हे अर्जुन, निश्चित परिमाण से अधिक खानेवाले की समाधि हो नहीं सकती, और न बिल्कुल ही न खानेवाले की ही। (इसी तरह) बहुत ज्यादा सोने वाले या अधिक जागने वाले की भी (नहीं होती)।१६।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।१७।।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(किन्तु) उचित मात्रा में जो खान-पान और घूमधाम करता है, दूसरी क्रियायें भी निश्चित परिमाण में ही करता है और सोता-जागता भी है नियमित रूप से ही, उसी की समाधि सब कष्टों की नाशक होती है—पूर्ण या सफल होती है ।१७।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

जब काबू में बखूबी आया हुआ मन आत्मा में ही जाके टिक जाता (तथा) अन्य सभी पदार्थों से निःस्पृह (हो जाता है) तभी कहा जाता है कि (मनुष्य) युक्त या योगारूढ़ हो गया ।१८।

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९॥

मन को आत्मा में टिकाने का अभ्यास करने वाले योगी का मन काबू में आ जाने पर ठीक वैसे ही हिलता-डोलता नहीं जैसे बहने वाली हवा से रहित स्थान में दिया की शिखा नहीं हिलती है ।१९।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥
तं विद्याद् दुःखसंयोग-वियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जिस दशा में योग के अभ्यास के फलस्वरूप काबू में आया हुआ मन शान्त और निश्चल हो जाता है, जिस दशा में अपने भीतर ही स्वयमेव अपने को देख के पूर्ण सन्तोष हो जाता है, इन्द्रियों की पहुंच के बाहर केवल बुद्धि से अनुभव किया जाने वाला अपार सुख जिस दशा में जाना जाता है, जिस दशा में जम जाने पर मनुष्य की आपा बिसर जाती है और उस वास्तविक दशा से फिर वह च्युत भी नहीं होता है, जिसे पा जाने के बाद उससे बढ़ के दूसरा कोई भी लाभ माना नहीं जाता और जिस दशा में स्थिर हो जाने पर बड़े से बड़ा भी कष्ट मनुष्य को विचलित नहीं कर सकता, दुःख के सम्बन्ध को सदा के लिये मिटा देनेवाली उस दशा को ही योग शब्द से समझना चाहिये। जो मन कभी ऊबना जानता ही नहीं उसी के द्वारा दृढ़ निश्चय के साथ उस योग की सिद्धि का अभ्यास किया जाना चाहिये।२०।२१।२२।२३।

संकल्प प्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥२५॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

संकल्प से पैदा होने वाली सभी कामनाओं को निर्मूल करके तथा मन से ही सभी इन्द्रियों को चारों ओर से रोक के धैर्य सहकृत बुद्धि के बल से धीरे-धीरे हर चीज से मन को हटाये और आत्मा में टिकाके दूसरा कोई खयाल न करे। चंचल होने के कारण

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कहीं भी टिक न सकनेवाला मन जिस-जिस चीज को लेके बाहर भागे उस-उस से उसे हटाते हुए केवल आत्मा में ही लगा के काबू में करें ।२४।२५।२६।

प्रशान्त मनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।।२७।।

क्योंकि बिल्कुल ही शान्त मन वाले, शान्त या दबे-दबाये रजोगुण वाले, निर्दोष (और इसीलिये) ब्रह्म स्वरूप हो जाने वाले इस योगी के पास सर्वोत्तम सुख-आत्मानन्द-खुद आ जाता है ।२७।

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ।।२८।।

इस प्रकार सदा आत्मा में मन को लगाता हुआ (इसके फलस्वरूप) पापशून्य योगी आसानी से ही ब्रह्म रूपी अखंड सुख-निरतिशय ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है ।२८।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।२९।।
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।३०।।

जिसका मन पूर्ण योग युक्त हो गया है उसकी सर्वत्र समदृष्टि-ब्रह्म या आत्म दृष्टि-होती है । (इसीलिये वह) सभी पदार्थों में अपने आपको और अपने में सब पदार्थों को देखता है । (इसी तरह) जो मुझ परमात्मा को (भी) सबों में और सबों को मुझ परमात्मा में देखता है उससे जुदा न तो कभी मैं होता हूँ और न वह मुझसे अलग होता है ।२९।३०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते ॥३१॥

सभी पदार्थों में ओत-प्रोत-मौजूद-मुझ परमात्मा को जो योगी इस प्रकार की एकता की दृष्टि से देखता है वह चाहे किसी भी दशा में रहने पर भी बराबर मुझ में ही डूबा रहता है ।३१।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

हे अर्जुन, चाहे सुख हो या दुःख, (दोनों को ही) सभी पदार्थों में जो अपने जैसा ही अनुभव करता है—जो अपने सुख-दुःख जैसे ही दूसरों के सुख-दुःख का अनुभव करता है—वही परले दर्जे का योगी माना जाता है ।३२।

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात् स्थितिं स्थिराम् ॥३३॥
चचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
एतस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

अर्जुन कहने लगा—हे मधुसूदन, यह जो समदर्शन रूपी योग आपने (अभी-अभी) बताया है, मन की चचलता के करते इसकी मजबूती का होना मैं (संभव) नहीं समझता । क्योंकि हे कृष्ण, यह मन तो चंचल है, बुरी तरह मथ देने, बेचैन कर देने वाला है, बलवान है और बड़ा मजबूत है । (इसीलिए) मैं तो इसे बाँध रखने को हवा को बाँध रखने की ही तरह कतई नामुमकिन मानता हूँ ।३३।३४।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्री भगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

श्री भगवान बोले—हे महाबाहु, बेशक मन चंचल (और इसी-लिए आमतौर से) काबू में नहीं आनेवाला है। फिर भी हे कौन्तेय, अभ्यास और वैराग्य के बल से ही काबू में आता है।३५।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

(बेशक) मैं मानता हूँ कि जिस मन पर काबू नहीं उससे यह योग सिद्ध हो नहीं सकता। (विपरीत इसके) काबू में आये मन से कोशिश करने पर (पूर्वोक्त) उपाय और हिकमत से सिद्ध हो सकता है।३६।

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥
एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

अर्जुन ने पूछा—हे कृष्ण, श्रद्धा युक्त होने पर भी पूरा यत्न न कर सकने के कारण जिसका मन (किसी भी वजह से) योग से हट गया वह मनुष्य योग-सिद्धि तो प्राप्त कर सकता नहीं। (तब)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उसकी क्या दशा होती है ? हे महाबाहु, कहीं ऐसा तो नहीं होता कि वादल के टुकड़े की तरह इधर-उधर भटकता हुआ, किंकर्त्तव्यविमूढ़ और ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग में टिक न सकने वाला वह मनुष्य कहीं का नहीं होता (और यों ही) चौपट हो जाता है ? हे कृष्ण, इस मेरे संशय को मिटाइए। क्यों क आपसे बढ़के इस शक को दूर करने वाला कोई हो सकता नहीं ।३७।३८।३६।

श्री भगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

श्री भगवान ने कहा—हे पार्थ, न तो यहाँ और न परलोक में ही उसकी कोई बुरी गतिं होती है। क्योंकि, ओ मेरे प्यारे, कल्याण के मार्ग पर चलने वाले किसी की भी दुर्गति हो नहीं सकती ।४०।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

योगभ्रष्ट—समाधि की सिद्धि न प्राप्त कर सकने वाला—(मनुष्य) उत्तम कर्म करने वालों के लोकों में जाके (और वहाँ) वहुत वर्ष—मुद्दत तक—रहके पवित्राचरण वाले श्रीमानों के घर जनमता है ।४१।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

या नहीं तो योगियों के ही समाज में जा पहुँचता है। असल में इस प्रकार का जो जन्म है वह संसार में अत्यन्त दुर्लभ है ।४२।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥४३॥

हे कुरुनन्दन, वहाँ उसे पूर्व जन्म वाली बुद्धि ही मिल जाती है । इसीलिए योग सिद्धि के लिए और भी ज्यादा यत्न करता है ।४३।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥४४॥

उस पूर्व जन्म के अभ्यास के ही फलस्वरूप वह जबर्दस्ती उधर ही खिच जाता है । (यही कारण है कि) योग की जानकारी एवं प्राप्ति की इच्छावाला भी शास्त्रीय विधि-विधान की पर्वा नहीं करता ।४४।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

(इस तरह) बहुत मुस्तैदी से योग की सिद्धि के लिए यत्न करने-वाला विशुद्धान्तःकरण योगी (लगातार) अनेक जन्मों के प्रयत्न से ही वह सिद्धि (और) उसके फलस्वरूप परम गति प्राप्त कर लेता है ।४५।

तपस्वीभ्योऽधिको योगी ज्ञानीभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

हे अर्जुन, यह योगी तपस्वियों से भी श्रेष्ठ है, ज्ञानियों से भी बड़ा माना जाता है और कर्मियों से भी ऊँचा स्थान रखता है । इस-लिए तुम (जरूर ही) योगी बनो ।४६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्तमो मतः ॥४७॥

सभी योगियों में भी जो मुझ आत्मारूपी परमात्मा में श्रद्धा के साथ मन को जमाके उसी में डूबा रहता है मेरे मत से वही युक्ततम है ।४७

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे ध्यानयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥



ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सातवाँ अध्याय

जैसा कि हमने पहले ही गीता के अध्यायों की संगतिके सिलसिले में कहा है और अवसर पाके बीच के गत पाँच अध्यायों में लिखा है, गीता के मुख्य प्रतिपाद्य विषयों का निरूपण यहीं पूरा हो जाता है। इन छे अध्यायों के बाद कोई भी प्रतिपादनीय मुख्य विषय रह जाता नहीं है। यों तो, जैसा कही चुके हैं, दो और तीन अध्यायों में ही ज्ञान और कर्म रूप दोनों ही मुख्य विषय आ चुके हैं। मगर उनके कुछ प्रधान पहलू रह जाते हैं और उन्हीं का निरूपण शेष तीन अध्यायों में किया गया है। इस तरह ज्ञान के स्वरूप, संन्यास और ध्यान या समाधि पर पूरा प्रकाश पड़ गया है। यही ज्ञान है। इन विषयों और उनके मुख्य पहलुओं पर पूरा प्रकाश डालने के लिये जो कुछ भी निरूपण अबतक हुआ है उससे इन विषयों का केवल परोक्ष या दिमागी ज्ञान काफी हो जाता है। इसीसे इस समूचे निरूपण एवं प्रतिपादन को भी ज्ञान कहते हैं, जैसे तेरहवें अध्याय में ज्ञान के साधनों और उपायों को ही "एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तं" (१३।११) में ज्ञान कहा है।

लेकिन इतने से ही काम नहीं चलता। एक तो ज्ञान को ही औरभी मजबूत बनाने के लिये बारबार उसके सम्बन्ध में खोद-विनोद करने और सोचने-विचारने की जरूरत होती है। इसी चीज को पुराने लोग मनन कहते आये हैं। पहले पढ़ या सुन के जो ज्ञान होता है उसी की मजबूती इस मनन से होती है। पढ़ने-सुनने को श्रवण कहते हैं। श्रवण और मनन के बाद जो तीसरी बात की जाती है, जिससे जानी-सुनी चीज की प्रत्यक्ष जानकारी हो जाय, उसी का नाम निदिध्यासन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है। उसका निरूपण छठे अध्याय में किया गया है। मगर यह निदिध्यासन उन्हीं के लिये है जो साक्षात्कार या प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहते हैं। उनके उपदेशक तथा आचार्य तो यह कहते नहीं। क्योंकि उन्हें तो पहले से ही साक्षात्कार होता है। लेकिन वह शिष्यों को, जिन्हें उनने श्रवण, मनन कराया है, इतनी मदद दे सकते हैं जिससे उनका निदिध्यासन आसानी से हो सके। इसी को आज की भाषा में प्रयोग (experiment) कहते हैं। इससे सुनने और विचारने वालों को इतनी आसानी हो जाती है कि पीछे यही काम वह खुद भी कर सकते और दूसरों को सिखा सकते हैं। इस प्रयोग के बिना उन्हें दूसरों को उपदेश देने की पूर्ण योग्यता शायद ही हो सके। जिसे पहले कहा था उसी को पीछे कर दिया—कह सुनाये को कर दिखाया। इसपर पहले भी लिखा गया है।

सातवें से लेकर दसवें और बारहवें से लेकर अठारहवें अध्याय तक मनन का ही काम किया गया है। हाँ, अठारहवें में सभी बातों का उपसंहार भी किया है। अधिकांश में उसे उपसंहार का ही अध्याय कहना चाहिये। यों तो उपसंहार करने में भी पूरा मनन होई जाता है। केवल ग्यारहवें अध्याय में निदिध्यासन के सहायतार्थ उन्हीं बातों का प्रयोग (experiment) करके अर्जुन को साफ-साफ दिखा दिया गया है। आत्मा से जुदा परमात्मा है नहीं और यह जगत् भी परमात्मा से पृथक न होके उसी का स्वरूप है, यही बात अर्जुन को उस अध्याय में प्रत्यक्ष दिखाई गई है। फलतः यह प्रयोग नहीं है तो और है क्या ? मालूम होता है, किसी प्रयोगशाला में बैठ के कोई पक्का जानकार चेले को प्रयोग के द्वारा चीजें दिखा रहा है। मनन की

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सबसे ज्यादा जरूरत पड़ती है, सो भी निरन्तर। इसीलिये प्रयोग के बाद भी मनन जारी रखा गया है। यदि मनन न रहे तो सारा प्रयोग बेकार हो जाय और भूल जाय। यह भी भूलना न चाहिये कि श्रवण की तरह मनन के समय भी ज्ञान होता ही है। उसके बिना मनन होगा कैसे ? इसीलिये आगे जो विज्ञान के लिये मनन के रूप में बातें कही गई हैं उन्हें केवल विज्ञान न कहके "ज्ञानं विज्ञानसहितम्" (९।१) या "ज्ञानं सविज्ञानं" (७।२) में ज्ञान के सहित विज्ञान या ज्ञान-विज्ञान दोनों ही कहा है । विज्ञान में तो संशय की गुंजाइश रही नहीं जाती। इसीलिये सातवें के शुरू में ही 'असंशयम्' कह दिया है।

छठें अध्याय के अन्त में जोआत्म-साक्षात्कार के लिये यह कहा है कि मुझ परमात्मा में ही मन लगा के मुझी में डूब जाओ, तभी काम पूरा होगा, उसी बात को लेके सातवें अध्याय का श्रीगणेश होना इसीलिये उचित भी है। जब साक्षात्कार की आखिरी बात और उसका अन्तिम एवं ध्रुव मार्ग यही बताया गया है तब तो मनन और निदिध्यासन कराने के साधनों के रूप में उसी पर विशेष प्रकाश डालना ही होगा। यह बात ऐसी भी नहीं कि किसी के प्रश्न करने पर कही जाय। यह तो आम बात है कि सभी जानकार यही कहते हैं। इसके लिये प्रश्न करने की कोई जरूरत हुई नहीं। इसीलिये अर्जुन के प्रश्न के बिना ही स्वयमेव—

श्री भगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

श्री भगवान बोले—हे पार्थ, मुझ परमात्मा में मन को जोड़के और मुझी को सब कुछ समझ के योग का अभ्यास करते हुये पूरी तौर से निस्सन्देह जिस तरह जान सकोगे वही बात सुनो ।१।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

(लो,) मैं तुम्हें ज्ञान और विज्ञान दोनों पूरा-पूरा अभी बताता हूँ, जिसे जानने के बाद इस दुनियाँ में और कुछ भी जानने योग्य रही न जायगा ।२।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

(एक तो) हजारों आदमियों में (शायद ही कोई) योग सिद्धि और ज्ञान प्राप्ति के लिये कोशिश करता है (और) योग की सिद्धि को प्राप्त हुये इन यत्न करने वालों में भी (शायद ही) कोई मुझ परमात्मा को यथार्थतः जानता—मेरा साक्षात्कार करता—है ।३।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेवच ।
अहंकारं इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्व और प्रधान या मूल प्रकृति—इस प्रकार यह मेरी प्रकृति—माया—ही के आठ विभाग हैं ।४।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

हे महाबाहु, यह तो अपरा या नीचे दर्जे वाली मेरी प्रकृति है। (लेकिन) इससे निराली जीव रूपी मेरी उस परा या श्रेष्ठ प्रकृति को

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भी तो जान लो, जो इस (समूचे) जगत को कायम रखती है ।५।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।६।।

इन्हीं (दोनों प्रकृतियों) से ही सभी पदार्थ बनते हैं ऐसा निश्चय कर लो। (अन्ततोगत्वा तो इस तरह) मुझ से ही सारा संसार पैदा होता है और मुझी में समा जाता है ।६।।

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।७।।

(क्योंकि) हे धनंजय, मुझ से बड़ा (तो) कोई हई नहीं। यह सब कुछ (दृश्य जगत) मुझ में उसी तरह पिरोया हुआ है जैसे माला के दाने सूत में ।७।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।।८।।

हे कौन्तेय, (देखो न,) मैं ही तो जल में (उसका सार) रस हूँ। चन्द्र और सूर्य का सार प्रकाश भी मैं ही हूँ। सब वेदों में (उनका सार) प्रणव या ॐकार भी मैं ही हूँ ।८।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।

जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ।।९।।

पृथ्वी में सुगन्ध, अग्नि में तेज, सभी पदार्थों में जीवन (और) तपस्वियों में तप मैं ही हूँ ।९।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।।१०।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हे पार्थ, सभी पदार्थों का सनातन मूल कारण मुझी को जानो। बुद्धिमानों में बुद्धि तथा तेजस्वियों में तेज मैं ही हूँ।१०।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

हे भरतर्षभ, बलवानों में कामना और राग से रहित जो बल है वह मैं ही हूं। प्राणियों में जो कामना धर्म का विरोधी नहीं हो वह भी मैं ही हूँ।११।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान् विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

(इस तरह संक्षेप में) जितने भी सात्त्विक, राजस और तामस पदार्थ पाये जाते हैं सब के सब मुझ परमात्मा से ही बने हैं। (लेकिन याद रहे कि) मैं उनमें नहीं हूँ, (किन्तु) वही मुझ में है ।१२।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

इन त्रिगुणात्मक पदार्थों में ही फँस के भूला हुआ यह संसार इनसे निराले और अविनाशी मुझ भगवान को ठीक-ठीक समझ पाता नहीं।१३।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

(ऐसा इसीलिये होता है कि) विलक्षण चमत्कार वाली, जिससे पार न पाया जा सके ऐसी (तथा) अनेक गुणों—फँसाने के साधनों—वाली मेरी माया ही तो आखिर यह सब कुछ है। (इसीलिये) जो लोग केवल मुझ परमात्मा में ही लग जाते हैं वही इस माया से पार पाते हैं।१४।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

(विपरीत इसके) जो मनुष्यों में अधम, दुष्कर्मी, आसुरी प्रकृति वाले (और) मूढ़ हैं—विवेकशून्य हैं (और) जिनका ज्ञान माया ने हर लिया है वह तो मुझ में कभी लगते नहीं ।१५।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

हे अर्जुन, हे। भरतर्षभ, (जो) सुकर्मी जन मुझ परमात्मा में लगते हैं वे चार प्रकार के होते हैं—धन चाहने वाले, कष्ट में पड़े हुये, ज्ञान की इच्छावाले और ज्ञानी ।१६।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

एक—अद्वैत ब्रह्मात्मा—ही में लीन ज्ञानी उन (चारों) में (भी) श्रेष्ठ है। क्योंकि मैं ज्ञानी का सबसे प्यारा हूँ और वह भी मेरा सबसे प्यारा है ।१७।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥

(यों तो) सभी अच्छे ही हैं। (लेकिन) ज्ञानी तो मेरी (अपनी) आत्मा ही है। क्योंकि वह मुझी में मन को जोड़ता तथा मुझ से बढ़ के दूसरा कुछ भी मानता ही नहीं ।१८।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बहुत जन्मों (में यत्न करते-करते तब कहीं सब) के अन्त में ज्ञान प्राप्त करके 'यह सब कुछ भगवान ही हैं' इस प्रकार मुझ परमात्मा में जो लग जाता है वही अत्यन्त दुर्लभ महात्मा है।१६।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

अनेक प्रकार की कामनाओं के चलते समझ खराब हो जाने से (बहुतेरे लोग) अपनी-अपनी रूचि के अनुसार विभिन्न देवताओं की शरण में उन्हीं-उन्हीं के नियमों के अनुसार जाते हैं ।२०।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हितान् ॥२२॥

जो-जो भक्त जिस-जिस देवता की पूजा श्रद्धा से करना चाहता है उस-उसकी उसी श्रद्धा को मैं—परमात्मा—अचल बना देता हूँ (और) वह उसी श्रद्धा के साथ उस (देवता) की आराधना करता भी है। (मगर) उसके बाद अपनी इच्छा के अनुकूल मेरे ही दिये पदार्थों को पाता है ।२१।२२।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यांति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

(फर्क यही होता है कि) उन नासमझों को जो फल मिलता है वह अचिरस्थायी होता है। (क्योंकि) देवताओं के पूजक (ज्यादे से ज्यादा) देवताओं तक ही पहुँच पाते हैं। (लेकिन) मेरे भक्त तो मुझ तक भी पहुँच जाते हैं—मेरा स्वरूप भी हो जाते हैं ।२३।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढ़ोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

मेरे निर्विकार, सर्वोत्तम एवं सबसे बढ़े-चढ़े अदृश्य स्वरूप को नासमझ लोग नहीं जानते । (फलतः) मुझे स्थूल या भौतिक रूप ही मान लेते हैं । (क्योंकि) मैं तो अनेक हिकमतवाली माया से छिपा होने के कारण सर्वसाधारण की नजर में आता नहीं । (इसीलिये) ये मूढ़ लोग मुझ अजन्मा (और) अविनाशी को ठीक-ठीक समझ पाते नहीं ।२४।२५।

वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

हे अर्जुन, मैं तो पुराने गुजरे हुये, वर्त्तमान एवं भविष्य सभी पदार्थों को देखता हूँ । लेकिन मुझी को कोई नहीं देखता ।२६।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥२७॥

हे भारत, हे परन्तप, रागद्वेष से पैदा होने वाले द्वन्द्व के झमेले के चलते सभी प्राणियों को जन्म से ही भूल-भुलैयाँ में पड़ जाना होता है ।२७।

येषान्त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रताः ॥२८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

(लेकिन) जिन पुण्यकर्मा लोगों के पाप खत्म हो चुके हैं वे द्वन्द्वों के झमेले से छुटकारा पाके मुझ परमात्मा को ही बड़ी मुस्तैदी से पकड़ लेते हैं।२८।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्त चेतसः ॥३०॥

(फलतः) जन्म और मरण के छुटकारे के लिये जो मुझ में ही मन लगा के यत्न करते हैं वही उस पूर्ण ब्रह्म को, अध्यात्म को और समस्त कर्मों को जानते हैं। (इसी तरह) अधिभूत, अधिदैव एवं अधियज्ञ के रूप में भी जो मुझ परमात्मा को साक्षात् अनुभव करते हैं, पूर्ण समाधि में मन लगाने वाले वही लोग मरण के समय भी मुझ परमात्मा का ही साक्षात्कार करते हैं।२९।३०।

इति श्री कृष्णार्जुन सम्वादे ज्ञान-विज्ञान-योगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥



ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आठवाँ अध्याय

सातवें अध्याय के अन्त में जो बातें दो श्लोकों में कही गई हैं उनके ही करते अर्जुन को प्रश्न करने का मौका लग गया और आठवें का श्रीगणेश उसी प्रश्न से होता है। अर्जुन ने क्यों प्रश्न किया और उसका आशय क्या है, आदि बातों पर पूरा प्रकाश, इन श्लोकों की विस्तृत व्याख्या एवं उत्तर का पूर्ण विवेचन पहले ही किया जा चुका है। सारी बातें ठीक-ठीक समझने के लिये वह विवेचन समझ लेना निहायत जरूरी है। यहाँ इतना ही कह देना है कि अन्त के दो श्लोकों में जो बातें कही गई है वह शास्त्र प्रसिद्ध हैं। पुराने दार्शनिक उन्हें बखूबी जानते थे। इतना ही नहीं। जैसा कि सातवें अध्याय के अन्त में हमने इन श्लोकों के ही प्रसंग में कह दिया है, ये बातें स्वयं सातवें अध्याय में भी आई है। यह भी ठीक है कि वहाँ उनके प्रसंग में अध्यात्म, अधिभूत आदि शब्द नहीं आये हैं। इसीलिये अर्जुन को यह खयाल होना जरूरी था कि यह कोनसी भाषा बोलते और क्या बातें कह रहे हैं। उसके लिये जैसे यह एकदम निराली चीज थी। इसीके साथ कर्म की बात भी कुछ खटकी। क्योंकि कर्म-अकर्म की बात बहुत बार बड़ी सफाई से कहके चौथे अध्याय में ही यह भी कह दिया है कि कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखने वाला ही योगी है और वह सभी कर्म करता है, कर सकता है "स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्" (४।१८)। फिर यह क्या बला आई कि जरामरण से छुटकारा के लिये जो लोग यत्न करते हैं और अधिभूतादि को जानते हैं वही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सभी कर्मों को जानते हैं? उसे यह कुछ अजीब सी बात लगी। इसी-
लिये खटकी भी।

ब्रह्म की बात यद्यपि कोई नई न थी; तथापि ब्राह्मी स्थिति की जो
बात दूसरे अध्याय में कही जा चुकी है और "लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणं"
(५।२५) तथा "सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं" (६।२८) में जो ब्रह्म या ब्रह्मा-
नन्द की प्राप्ति कही गई है, उसकी अपेक्षा यह कोई नई चीज ब्रह्म
शब्द से तो नहीं कही जा रही है, यह शंका उसे हो सकती थी।
क्योंकि समाधि के द्वारा ब्रह्मज्ञान की बात कहने के बाद यहाँ एका-
एक यह कह देना कि पूर्ण या कृत्स्न ब्रह्म को ऐसे ही लोग जानते हैं
जरूर घपले में डालने वाला प्रतीत होता है। यह कृत्स्न रूप से जान-
योग्य कोई और ही ब्रह्म है क्या, यह खयाल इसीलिये हो आया। क
हैं भी अनेक यह कह चुके हैं। इसलिये भी ऐसा खयाल अनुचि
नहीं कहा जा सकता है।

मरणकाल के बारे में भी शंका का होना जरूरी था। भला
अपार वेदना के समय किसी का चित्त एकदम एकाग्र कभी रह सक
है? यह तो निराली बात होगी। जबतक वह मनुष्य दुनिया
न्यारा कोई अलौकिक पदार्थ न माना जाय तबतक यह नहीं
सकता। ऐसा होना तो ठीक वैसा ही है जैसा लपट के बीच में
की ठंडक का अनुभव! इसीलिये खासतौर से जोर देके पूछना
कि प्रयाण के समय कैसे यह बात होगी? कैसे मन काबू में रहेग
अधियज्ञ सम्बन्धी प्रश्न पर तो विशेष प्रकाश पहले ही डाला गय
कि इसका क्या आशय है। इन्हीं सब बातों को मन में रखके—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

अर्जुन ने पूछा—हे पुरुषोत्तम, हे मधुसुदन, वह ब्रह्म क्या (चीज) है ? कर्म क्या है ? अधिभूत भी कौन कहा गया है ? अधिदैव किसे कहा जाता है ? इस शरीर में अधियज्ञ कौन है और क्यों है ? मरण-काल में भी मन को काबू रखके लोग आपको कैसे देखते हैं ? ।१।२।

श्री भगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥४॥

श्री भगवान बोले—हे देहधारियों में श्रेष्ठ, जो किसी भी दशा में नष्ट नहीं होता वही ब्रह्म है, पदार्थों का जो अपना रूप है वही अध्यात्म कहा जाता है, पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति (आदि) जिससे हो उसी त्याग या क्रिया को कर्म नाम दिया गया है, पदार्थों की विनाशिता ही अधिभूत है और व्यापक परमात्मा हीं अधिदैवत है। इस शरीर में अधियज्ञ तो मैं ही हूँ ।३।४।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं ैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।।६।।

हे कौन्तेय, अन्त काल में—मरने के समय—शरीर त्यागते हुए मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर को छोड़के जोप्रयाण करता है—मर जाता है—वह मेरा ही स्वरूप हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। (क्योंकि) शरीरान्त के समय जिसी-जिसी पदार्थ को स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है—कारण हमेशा उसी पदार्थ की भावना उसके भीतर रही है—उसी-उसी का रूप बन जाता है ।५।६।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।७।।

इसलिए हर समय मुझी को लगातार याद करो और लड़ते भी रहो। (इस तरह) मुझमें ही मन और बुद्धि को लिपटा देने पर निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त होंगे ।७।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरूषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।।८।।

हे पार्थ, (इसीलिए) अभ्यास रूपी उपाय से एकाग्र तथा अन्य किसी भी पदार्थ में जा नहीं सकने वाले मन से दिव्य परम पुरूष—पुरूषोत्तम परमात्मा—का निरन्तर चिन्तन करता हुआ (मनुष्य) उसी को प्राप्त करता है ।८।

कविंपुराणमनुशासितारमणोरणीयां समनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।९।।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०

जो (आदमी) प्रयाण—मरण—काल में योग के बल से भौओं के मध्य में प्राण को दृढ़ता से टिका के भक्तियुक्त एकाग्र मन से दूरदर्शी—सर्वज्ञ—पुरातन, अनुशासन करनेवाले, परमाणु से भी परमाणु—अत्यन्त सूक्ष्म—सब पदार्थों के आधार, अचिन्तनीय स्वरूप वाले, सूर्य सदृश प्रकाशमान और अज्ञान से दूर रहने वाले दिव्य परमपुरूष को निरन्तर याद करता है वह उसी को प्राप्त होता है ।८।१०।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

वेदों के ज्ञाता जिसे अक्षर—अविनाशी—कहते हैं, रागद्वेषादि से रहित संन्यासी जिस रूप में मिल जाते हैं (और) जिसकी (प्राप्ति की) इच्छा वाले (आजन्म) ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उसी पद (की प्राप्ति कैसे होती है यह बात) तुम्हें संक्षेप में अभी बताता हूँ ।११।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरूद्ध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥
ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

सभी (इन्द्रियों के) छिद्रों को रोक के, मन को हृदय में ही अँटका के और अपने प्राणों को मस्तक में ले जाके योग की धारणा में लगा हुआ जो (आदमी) ओंकार रूपी एकाक्षर ब्रह्म का (मन से ही)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उच्चारण करता और मुझ परमात्मा को ही निरन्तर याद करता हुआ शरीर छोड़ के प्रयाण करता है वही परमगति—मुक्ति—प्राप्त करता है।१२।१३।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

हे पार्थ, अनन्य चित्त से—मन को अन्य पदार्थों में जाने न देकर—जो मुझ परमात्मा को नित्य ही याद करता है उस सदा योगारूढ़ योगी के लिए तो मैं सुलभ ही हूँ।१४।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

परम संसिद्धि—जीवन्मुक्ति—की दशा वाले महात्मा जन मुझ परमात्मा का ही रूप हो के दुःख के घर (और) बार-बार होने वाले (इस) पुनर्जन्म से रहित हो जाते हैं।१५।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

हे अर्जुन, हे कौन्तेय, ब्रह्मलोक तक के सभी स्थानों से पुनः लौटना—जन्म लेना—पड़ता ही है। केवल मुझे प्राप्त होने पर ही पुनर्जन्म नहीं होता।१६।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥

ब्रह्मा की दिन रात (का हिसाब) जानने वाले जानते हैं कि (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि इन चार) युगों के हजार बार गुजरने पर ब्रह्मा का एक दिन और उतने ही की रात होती है।१७।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥
भूतग्राम: स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवश: पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

दिन के आते ही—शुरू होते ही—अव्यक्त—ब्रह्मा की निद्रावस्था—से ही सारे व्यक्त पदार्थ पैदा होते हैं। रात आने पर फिर उसी अव्यक्त नामक दशा में बिलीन हो जाते हैं। हे पार्थ, भौतिक पदार्थों का यह वही समूह बारबार पैदा होके रात आते ही मजबूरन नष्ट हो जाता और दिन आते ही फिर बन जाता है।१८।१९।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातन: ।
य: स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

उस अव्यक्त या स्वापावस्था वाले ब्रह्मा से भी परे—बढ़कर—जो अव्यक्त है वही सभी पदार्थों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।२०।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहु: परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

इसी (दूसरे) अव्यक्त को ही अक्षर या अविनाशी कहा गया है। वही परम-गति (भी) है, जिसके प्राप्त हो जाने पर लौटना नहीं होता। वही मेरा परम धाम (भी) है।२१।

पुरुष: स पर: पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्त:स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हे पार्थ, जिसके भीतर ये सभी पदार्थ मौजूद हैं और जो इन सबों में व्याप्त है वह परम पुरुष केवल अनन्य भक्ति के द्वारा प्राप्त हो सकता है।२२।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

[हे भरतर्षभ, योगीजन जिस काल में मरने पर—प्रयाण करने पर—नहीं लौटते और लौटते भी हैं वह काल अभी बताये देता हूँ।२३

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण के छे महीने, इनमें प्रयाण करने वाले ब्रह्म के उपासक जन (क्रमशः) ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।२४।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते ॥२५॥

धूम, रात, कृष्णपक्ष और दक्षिणायन के छे महीने, इनमें प्रयाण करनेवाला योगी चन्द्रमा की ज्योति तक पहुँच के वापिस आता है।२५।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शास्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्त्तते पुनः ॥२६॥

इस प्रकार जगत् के ये शुक्ल और कृष्ण मार्ग चिरन्तन माने जाते हैं। (इनमें) एक से (जाने पर) आना जाना पुनः नहीं होता है। (मगर) दूसरे से होता है।२६।

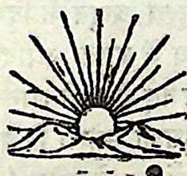
ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥
वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

हे पार्थ, जो कोई भी योगी इन मार्गों को भीतरी दृष्टि से देख लेता है वह भी (कभी फिर) मोह में नहीं फँसता। इसीलिए हे अर्जुन, तुम हमेशा ही योगयुक्त हो जाओ। (क्योकि) वेदों (के पढ़ने), यज्ञों (के करने), तपस्याओं और दानों के जितने उत्तम फल कहे गये हैं, उन सबों से बढ़कर फल इस बात के पूर्ण जानकार योगी को मिलता है। (वह तो) मूल—लक्ष्य—स्थान पर ही पहुंच जाता है।२७।२८।

इति श्री० अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥



RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

नवाँ अध्याय

सातवें अध्याय में ज्ञान-विज्ञान का निरूपण शुरू करके जिन पंचभूत आदि का उल्लेख किया था उन्हीं को अध्यात्म, अधिभूतादि के रूप में कह के उस अध्याय का उपसंहार किया गया है। यों कहिये कि अध्यात्म आदि के रूप में हजारों पदार्थों में से कुछ एक को ही नमूने के तौर पर वहाँ दिया गया है। शेष का अन्वेषण विचार एवं मनन करने वाले उसी तरह कर सकते हैं। इसी सिलसिले में अर्जुन ने अध्यात्म आदि के बारे में शंका उठा दी कि यह क्या चीजें हैं और शरीर में इनका पता है या नहीं? उसी के उत्तर में समूचा आठवाँ अध्याय पूरा हो गया। इससे अर्जुन को सन्तोष भी हो गया कि दरअसल बात है क्या।

ऐसी दशा में आठवें अध्याय के बाद हम फिर सातवें अध्याय के ही मुख्य विषय ज्ञान-विज्ञान पर स्वभावतः पहुँच जाते हैं। क्योंकि प्रासंगिक बात पूरी हो जाने पर मूल विषय का मौका खुदबखुद आ जाता है। यही कारण है कि नवाँ अध्याय इसी बात को लेके ही शुरू होता है। फलतः उसके पहले ही श्लोकों में ज्ञान-विज्ञान पुनरपि आ गया है। शायद उसका महत्त्व अर्जुन के दिमाग में अच्छी तरह न आया हो। अतएव इस सम्बन्ध में बहुत ज्यादा माथा-पच्ची करना भी वह पसन्द न करे। इसी वजह से इसी ज्ञान-विज्ञान को राजविद्या और राजगुह्य नाम देके इसकी महत्ता दिखानी पड़ी। विद्याओं के राजा को राजविद्या और गुह्यों या गोपनीय (secret) पदार्थों के राजा को राजगुह्य कहते हैं। राजा का अर्थ है सर्दार या शिरोमणि। इसका मतलब यह है कि जितनी भी गुप्त से गुप्त बातें जानी जा सकती हैं उन सबों की अपेक्षा यह चीज कहीं महत्त्व रखती है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

इसीलिये इसकी जानकारी सबोंसे बढ़ के जरूरी है। यदि इस अध्याय का विषय राजविद्या-राजगुह्य बताया गया है तो इसका यह आशय कदापि नहीं है कि यह कोई और ही चीज है। यह तो उसी ज्ञान-विज्ञान का ही दूसरा नाम है। यह नाम उसी चीज की महत्ता के पहलू पर जोर देने के ही लिये उसे दिया गया है, यह तो अभी-अभी कहा है। नामान्तर और प्रकारान्तर से एक ही बात का प्रतिपादन उसमें सरसता लाने के साथ ही आकर्षक भी होता है।

अगर हम इसमें प्रतिपादित विषय की जानकारी के लिये खास तौर से नजर डालें कि कौन-सी बात कब और कैसे कही जा रही है तो पता चलेगा कि शुरू के तीन श्लोक तो भूमिका के ही रूप में हैं। वे इसी बात को दिल में बैठा देने के लिये हैं कि इसका बार-बार विमर्श और मनन अत्यन्त आवश्यक है। उसके बाद के तीन (४-६) श्लोकों को भी देखने से पता लग जाता है कि वे सातवें अध्याय के शुरू के दो (६-७) श्लोकों के ही स्थान में आये हैं। फलतः इनमें कुछ तो वही बातें ज्यों की त्यों हैं और कुछ उन्हीं का विवरण एवं स्पष्टीकरण है। उनके बाद के आठ (७-१५) श्लोकों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि वे भी एक प्रकार से सातवें अध्याय के ही सात (१३-१९) श्लोकों के रूपान्तर हैं। प्रायः वही बातें इनमें प्रकारान्तर से कही गई हैं। इसी प्रकार २० वें से २५ वें तक के छे श्लोक भी सातवें के २० से २६ तक के सात श्लोकों के ही रूपान्तर हैं और यह बात बहुत साफ है। इसी तरह और भी बची-बचाई बातें मिलती-जुलती हैं; हालाँकि कहने और प्रतिपादन की रीति नई है, विलक्षण है और यही इसकी खूबी है। मनन में इसी की जरूरत होती भी है।

अब आइये जरा विज्ञान के मुख्य विषय को भी देखें। सृष्टि के विभिन्न पदार्थों को लेके उनका विश्लेषण करना और इस प्रकार उन्हें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

आत्मा-परमात्मा का रूप सिद्ध करना यही तो मुख्य बात है। सातवें अध्याय के शुरू में यही आई है भी। नवें अध्याय के चार (१६-१६) श्लोकों में यह बात पाई जाती है। सातवें अध्याय के पाँच (८-१२) श्लोकों में भी इसी तरह की बात आई है। उस अध्याय के "अहं कृत्स्नस्य जगत" (७।१६) तथा "ये चैव सात्त्विकाः" (७।१२) के ही स्थान पर "गतिर्भर्ता" (६।१८,१६) आदि दो श्लोक प्रतीत होते हैं। इनमें कुछ ज्यादा ब्योरा भी नहीं मिलता है, सिवाय इसके कि उन्नीसवें के पूर्वार्द्ध में सूर्य की बात 'तपामि'—तपता हूँ—कहने से प्रतीत होती है। शेष श्लोकों में अधिकांश वेद के ही ऋतु, यज्ञ, मंत्र आदि तथा ऋक्, साम, यजुः मंत्रों को ही कहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि सातवें अध्याय के पृथ्वी आदि सभी पदार्थों को तो अध्यात्म, अधिभूतादि के रूप में उसी अध्याय में और आठवें में भी ले लिया है। वहीं उस पर प्रकाश भी काफी डाला है। उसका केवल "प्रणवः सर्ववेदेषु" (७।८) बच गया है जरूर। इसीलिये उसी का विशेष विवरण और विश्लेषण इस अध्याय में करके उस बात को अच्छी तरह समझाया है। ऐसा लगता है कि "प्रणवः सर्ववेदेषु" सूत्र है। वेद तो आखिर शब्द ही है न? और शब्द के विना अर्थ का पता नहीं लगता। फलतः शब्द अर्थ में व्याप्त है। यहाँ तीसरे श्लोक में उसी व्यापक वस्तु का उल्लेख है, न कि दूसरे का। अतः उससे ही शुरू करने का मतलब यही प्रतीत होता है। इसी के साथ यज्ञों पर भी कुछ विशेष प्रकाश दूसरे रूप में इसी अध्याय में पड़ गया है, जब कि "त्रैविद्या मां" में यज्ञों के स्वर्गादि फलों के साथ ही और बातें भी कही गई हैं। यह पहलू पहले उठाया नहीं गया था। फिर भी अधियज्ञ कहने से बात तो दिमाग में थी ही इन्हीं सब बातों का खयाल करके—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्रीभगवानुवाच

इदं तु गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥

श्री भगवान कहने लगे—दोष दृष्टि तथा निन्दा बुद्धि से रहित तुम्हें अत्यन्त गोपनीय ज्ञान-विज्ञान अभी और भी बताता हूं। इसे जानके बुराई से छुटकारा पा जाओगे।१।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं ससुखं कर्त्तुमव्ययम् ॥२॥
अश्रद्दधाना पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्त्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

यह सभी विद्याओं एवं गोपनीय वस्तुओं का राजा है, पवित्र है, उत्तम है, प्रत्यक्ष अनुभव योग्य है, धर्म के अनुकूल है, अविनाशी है (और) आसानी से ही इसे प्राप्त किया जा सकता है।२। हे परंतप, इस धर्मयुक्त बात में श्रद्धा नहीं रखनेवाले मनुष्य मुझ तक पहुँच न सकने के कारण जन्म-मरण रूपी संसार में निरन्तर चक्कर काटते रहते हैं।३।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥५॥
यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मुझ अव्यक्त—अदृश्य—मूर्ति ने ही इस समूचे जगत् को व्याप्त कर रखा है। सभी पदार्थ मुझी में हैं, मैं उनमें हर्गिज नहीं हूँ। (लेकिन) मेरा ईश्वरी करिश्मा तो देखो कि ये पदार्थ मुझमें (वस्तुत:) हैं भी नहीं ! सभी पदार्थों को कायम रखनेवाली मेरी आत्मा पदार्थों का भरण-पोषण भी करती है (और) उनमें रहती भी नहीं ! जिस तरह सभी जगह फैली विस्तृत हवा हमेशा आकाश में ही रहती है उसी प्रकार सभी पदार्थ मुझमें हैं यही समझो ।४।५।६।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

हे कौन्तेय, सृष्टि के नाश—प्रलय—के समय सभी पदार्थ मेरी प्रकृति में ही विलीन हो जाते हैं। फिर सृष्टि के आरम्भ में मैं उन्हें रचता हूँ। अपनी प्रकृति का सहारा लेकर ही ही मैं बार-बार इस समूचे पदार्थ-समूह—जगत्—को बनाता रहता हूँ जो प्रकृति के कब्जे में आने के कारण मजबूर है (कि पैदा हो और नष्ट हो) ।७।८।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥
मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्त्तते ॥१०॥

हे धनंजय, सृष्टि-प्रलय के उन कामों में आसक्ति-शून्य और तटस्थ की तरह रहनेवाले मुझको वे कर्म बन्धन में नहीं डालते हैं। मेरे

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अध्यक्ष होने (मात्र) से ही प्रकृति स्थावर-जंगम जगत् की रचना कर डालती है। इस जगत् का (इस तरह) बार-बार बनना-बिगड़ना—सृष्टि-प्रलय का यह चक्र—(भी) इसीलिए चालू रहता है।६।१०।

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

मेरे विलक्षण, निराले, निर्विकार (तथा) सर्वोत्तम स्वरूप को नहीं जान सकने के कारण ही मूर्ख लोग मानव शरीरधारी मेरा तिरस्कार करते हैं—मुझे भगवान नहीं मानते हैं। (ये लोग) फिजूल आशाएँ बाँधते, फिजूल कर्म करते, फिजूल पढ़ते-लिखते (एवं) उल्टी समझ रखते हैं। (क्योंकि) भुलावे में डालनेवाली राक्षसी एवं आसुरी—राजसी एवं तामसी—प्रकृति—स्वभाव—से मजबूर हैं।११।१२।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥
सततं कीर्त्तयन्तो मां यतंतश्च दृढ़व्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

हे पार्थ, इनके विपरीत दैवी—सात्विक—प्रकृति वाले महात्माजन मुझे संसार का मूल कारण मानके अनन्य मन से मुझी को भजते हैं। (वे लोग) सदा भक्ति पूर्वक दृढ़ संकल्प के साथ मेरा कीर्त्तन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

करते हुये, प्रकारान्तर से (भी) यत्न करते हुए और मेरा नमस्कार करते हुये निरन्तर मुझी में लग के मेरे ही निकट पड़े रहते हैं—मेरी हो उपासना करते हैं ।१३।१४।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥

दूसरे (महात्माजन) ज्ञानयज्ञ से ही मेरी पूजा करते हुए उपासना करते हैं । (यह ज्ञानयज्ञ वाली उपासना तीन प्रकार की होती हैं—) एक ही परमात्मा के रूप में, भिन्न-भिन्न पदार्थों के रूप में अनेक तरह की और विराट् के रूप में ।१५।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

मैं ही ऋतु हूँ, मैं ही यज्ञ हूं, मैं ही स्वधा हूँ, औषधियाँ (यज्ञीय अन्नादि) मैं ही हूँ, मन्त्र मैं ही हूँ, घी मैं ही हूँ । अग्नि मैं ही हूँ (और) आहुति (भी) मैं ही हूँ ।१६।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ॥१७॥

मैं ही इस जगत के लिए पिता, माता, धाय (पिलाने-खिलाने वाली, जि ा धाई भी कहते हैं,) तथा पितामह—दादा—हूँ । जानने योग्य, पवित्र या शोधक पदार्थ, ॐकार, ऋक्, साम एवं यजुः भी मैं ही हूँ ।१७।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जहां पहुंचा जाय वह, पोषक, स्वामी, साक्षी, सबका आधार, शरण, सुहृद्, जिससे उत्पत्ति हो, जिसमें पदार्थ लीन हों या जा मिलें जिसमें कायम रहें, सभी चीजों या कर्मों का कोष और पदार्थों का निरन्तर कायम रहने वाला बीज (भी मैं ही हूं) ।१८।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

हे अर्जुन, मैं ही (सूर्य की किरण के रूप में) तपता हूं, वृष्टि या जल को रोक रखता और जमा करता हूं और वर्षता भी हूं । अमृत, मृत्यु, सत्, असत् भी मैं ही हूं ।१९।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।२०।
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

तीनों वेदों में बताये कर्मों के जाननेवाले (लोग) यज्ञों के द्वारा मेरा पूजन करके सोमलता का रस पीते (और इस तरह) पाप-रहित होके स्वर्ग प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं । वे इन्द्र के सुन्दर लोक—स्वर्ग—में जाके वहां देवताओं के दिव्य भोगों को भोगते हैं । (पीछे) वहीलोग उस विशाल स्वर्ग के भोगों को भोग चुकने के बाद (अपना) पुण्य पूरा हो जाने पर (पुनः) मर्त्यलोक में ही आ धमकते हैं । तीनों वेदों में बताये धर्मों के करने वाले भोगेच्छुक लोग इसी तरह आवा-जाही जारी रखते हैं ।२०।२१।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जो भक्तजन अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, मुझमें ही निरन्तर लगे रहने वाले उनलोगों का योगक्षेम मैं (खुद) करता हूं।२२।

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

हे कौन्तेय, अन्य देवताओं के भी जो भक्तजन श्रद्धा से उनका यजन करते हैं वे भी यजन तो मेरा ही करने हैं। (फर्क यही है कि) विधिपूर्वक या उचित रीति से नहीं करते।२३।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥२४॥

क्योंकि सभी यज्ञों का भोगने वाला—उनके द्वारा आराध्य देवता—और फल देने वाला भी मैं ही हूं। लेकिन वे मुझे यथार्थ रूप में जानते ही नहीं। इसीसे चूक जाते हैं।२४।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यांति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥२५॥

(बात यों है कि) देवताओं के व्रत-पूजन करने वाले उन्हीं तक पहुँचते हैं, पितरों के व्रतवाले उनतक, भूतों के पूजक भूतों तक और मेरे पूजक मुझ तक भी पहुँचते हैं।२५।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

जो (श्रद्धा) भक्ति से मुझ परमात्मा को पत्ते, फूल, फल (या) जल अर्पण करता है, मन पर काबू रखने वाले उस मनुष्य की भक्ति पूर्वक भेंट को मैं स्वीकार करता हूं।२६।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम् ॥२७॥

हे कौन्तेय, जो दान, यज्ञ, योग, तप या और भी कोई काम करते हो वह सब कुछ मुझी को अर्पण करो—सब कुछ मेरी ही पूजा मानो ।२७।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

इस प्रकार कर्मों से उत्पन्न और उन्हीं में पुनः मनुष्यों को जोड़ने वाले बुरे-भले फलों से तुम्हारा पिंड छूट जायगा। (उसके बाद क्रमशः) संन्यास मूलक योग या समाधि में अपने मन को लगाके तुम मुक्त होगे (और इस तरह) हमें प्राप्त कर लोगे ।२८।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

(यद्यपि) मैं सभी पदार्थों में एकरस हूँ (और इसीलिये) न मेरा कोई शत्रु है न मित्र; (तथापि) जो भक्ति पूर्वक मेरा भजन करते हैं वे मुझ में और मैं उनमें हूँ ।२९।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥३२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

अगर पक्का दुराचारी भी हो, फिर भी मुझ परमात्मा को अनन्य भाव से भजे, तो उसे साधु ही मानना होगा। क्योंकि (अब तो) उसका व्यवसाय उचित ही है। (इसलिये) शीघ्र ही वह धर्मात्मा हो जाता है (और धीरे-धीरे उक्त रीति से) अखंड शान्ति—मुक्ति—बखूबी प्राप्त कर लेता है। हे कौन्तेय, मन में बिठा लो कि मेरे भक्त की दुर्गति कभी होती ही नहीं। हे पार्थ, (यहाँ तक कि) जो नीच एवं दूषित योनि वाले स्त्री, वैश्य और शूद्र भी हैं वे भी मेरा आश्रय लेके (क्रमशः) परमगति हासिल कर लेते हैं। तो फिर पुण्यजन्मा ब्राह्मणों तथा क्षत्रिय भक्तों का क्या कहना? (इसलिये) इस सुख से रहित और चन्दरोजा शरीर को पाके मुझी को भजो।३०।३१।३२।३३।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

हमी में मन लगाओ, हमारे ही भक्त हो जाओ, हमारा ही यज्ञ करो (और) हमारा ही नमस्कार करो। इस प्रकार हमीं को सब कुछ समझते हुये हमीं में मन को जोड़ देने से हमीं को प्राप्त हो जाओगे।३४।

इति श्री० राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥



ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दशवाँ अध्याय

सातवें अध्याय में जिस ज्ञान विज्ञान का आरंभ हुआ था वही नवें के अन्त तक चलता आया है। मगर यह निरूपण केवल आंशिक और संकुचित रूप में ही हुआ है, यह हमने पहले ही बता दिया है। इसका कारण भी समझा दिया है। ठीक ही है, इतने गहन और गूढ़ विषय का, जिसके बारे में कृष्ण ने कह दिया है कि यह बात इस लम्बी मुद्दत में लुप्त हो गई है, "योगो नष्टः परन्तपः" (४।२), एकाएक विस्तृत निरूपण करना अर्जुन को और दूसरों को भी चकाचौंध में डालना हो जाता। फलतः इसका बखूबी समझना और भी असंभव बन जाता। क्योंकि लोग चटपट कह बैठते कि यों ही जानें क्या-क्या अंटसंट बके जाते हैं जो अक्ल में समाता ही नहीं। इतना ही नहीं, तब तो इससे लोगों को एक प्रकार की अश्रद्धा ही हो जाती। इसीलिये धीरे-धीरे प्रवेश कराते-कराते कृष्ण ने अर्जुन के मन में चस्का और लगन पैदा करने साथ ही इस गहन विषय में उसकी बुद्धि के प्रवेश का रास्ता भी साफ कर दिया। अर्जुन को अब इसमें वह कठिनाई नहीं प्रतीत होती थी जो पहले दीखती थी। उसका मन भी इधर झुकता नजर आया। यह बात दसवें अध्याय के पहले ही श्लोक के 'प्रीयमाणाय' शब्द से प्रकट हो भी जाती है। इसीलिये उसी श्लोक में कृष्ण ने साफ ही कह दिया कि अभी और भी मेरी मजेदार और महत्वपूर्ण बातें सुनो "भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः"।

एक बात और भी है। कहा जा सकता है कि भगवान से इस जगत के बनने की बात तो लुप्त हुई नहीं है। जिस योग के लोप होने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

की बात चौथे अध्याय में कही गयी है उसके भीतर तो इसके सिवाय दूसरी अनेक बातें भी हैं और उन्हींका विलोप हो जानेसे वहाँ मतलब हो सकता है। फिर भी यह तो ठीक ही है कि जिस चीज को भगवान खुद कहेंगे वह जितनी खूबी तथा आसानी से जानी जा सकेगी वैसी दूसरों की जबानी हर्गिज नहीं। आखिर इस चीज के करने वाले, इस लीला के फैलानेवाले और मूल कारण तो वही हैं न? यह नाटक तो भगवान का ही फैलाया हुआ है न? इसीलिये इसका कच्चा चिट्ठा, इसकी हकीकत जितनी वह जानेंगे उतनी और कोई क्या जानेगा? क्योंकि वह तो उन्हीं से या दूसरों से ही सीख-सुनके जानेगा और कहेगा न? फिर उसके कहने में वह वह मजा कैसे आयेगा जो ठेठ भगवान के कहने में? दूसरे ऋषि-मुनि या उपदेशक तो उसके ही बनाये हुए हैं न? फिर यह कैसे आशा की जाय कि वे रत्ती रत्ती बातें बखूबी जान सकेंगे? और जो भी जानें वे भी उस तरह कैसे समझा सकेंगे? ऐसे तो विरले ही हो सकते हैं जिन्होंने आत्म ज्ञान के द्वारा इन सभी चीजों का साक्षात्कार कर लिया हो। क्योंकि "मनुष्याणां सहस्रेषु" (७।३) की भी बात तो आखिर इसी सिलसिले में कही गई है। और अगर किसी बिरले माई के लाल ने ऐसी योग्यता भी प्राप्त की तो भी उसका मिलना आसान तो नहीं है। इसलिये आवश्यक हो जाता है कि भगवान स्वयमेव सारी दास्तान सुनायें। जब उन्हीं की कृपा से विवेक आदि सद्गुण औरों को मिलते हैं, जिससे वे ये बातें जान के दूसरों को भी जनायें; मन, इन्द्रिय आदि को काबू में करके पहले इस विषय को अच्छी तरह स्वयं देख लें; अनन्तर दयार्द्र होके अन्यों को भी बतायें, तो क्यों न भगवान से ही यह चीज जानी जाय? दसवें अध्याय के कुल ४२ श्लोकों में जो शुरू के पूरे अठारह श्लोक इन्हीं बातों के कहने में खतम हुये हैं उसका यही रहस्य है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उनमें भी पहले पूरे ग्यारह श्लोकों में स्वयं कृष्ण ने इस विषय की गहनता के खयाल से ही सब कुछ कहा है और बताया है कि इसे विरले ही जानते हैं, सो भी मुझ भगवान की ही अनुकम्पा से। तभी तो जो अर्जुन चुप बैठा था उसे एकाएक खयाल हो आया है कि ओहो, जब ऐसी बात है तब तो मुझे खुद कृष्ण से ही अनुरोध करना चाहिये कि वे स्वयमेव ये बातें बतायें और कहें कि किस प्रकार उनने यह विश्व का नाटक फैलाया है। कहीं ऐसा न हो कि मेरी इस चुप्पी का कुछ और ही अर्थ लगा के या तो इसे कतई छोड़ ही दें, या अगर सुनायें भी तो उस विस्तार के साथ नहीं जिसकी जरूरत है और उस मनोयोग से भी नहीं जिसके करते विषय में जीवन आ जाता है। इतना ही नहीं। आगे तो कृष्ण को ही इस "कह सुनाऊँ" के बाद ही "कर दिखाऊँ" भी करना था। तभी तो दिल में यह बात जाके बैठ सकती थी। इसलिये जब खुद ही वह कहेंगे तो दिखाने या प्रयोग करने में भी न तो हिचकेंगे और न आधे मन से उसे करेंगे ही। इसीलिये उसने जोर दिया कि नहीं नहीं, महाराज, आप ही कृपा कीजिये और सुनाइये। उसके भीतर विषाद के करते जो गड़बड़ पैदा हो गई थी उसी के चलते जानें कितनी ही बातें भूल ही गई थीं। उन्हीं में कुछ एकाएक अब याद भी हो आईं। इसीलिये तो जहाँ पहले उसने कृष्ण के बारे में कहा था कि आप तो अभी पैदा हुये हैं; फिर यह कैसे मानूं कि सृष्टि के आदि में आपने विवस्वान से यह बातें कही थीं; तहाँ अब उसने यह भी कह दिया कि हाँ, हाँ, भगवन् आपके बारे में बड़े-बड़े महर्षियों से भी सुना था वही, जो आप खुद कह रहे हैं! क्षमा करें, मेरी बुद्धि ही जानें क्या हो गई थी कि कुछ याद ही नहीं पड़ता था! आपकी महिमा तो अपरम्पार है, इसमें कोई शक नहीं है। यह भी नहीं कि यह आपकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रशंसा मात्र है। यह तो वस्तुस्थिति है। इसलिये अब तो आपको अपनी लीला सुनानी ही होगी, चाहे जो कुछ भी हो जाय।

इसके बाद तो भगवान के लिये कोई चारा ही न था। फलतः फौरन ही १९ वें श्लोक से ही उन्हें शुरू कर देना ही पड़ा। पूरे २४ श्लोकों में इसे पूरा करके भी अन्त में उनने कह दिया कि इस पँवारे का कहीं अन्त थोड़े ही है; मैंने तो यह नमूने की तौरपर ही कुछ कह दिया है, "नांतोऽस्ति मम", "एषतूद्देशतः प्रोक्तः" आदि। इसीलिये जो लोग शुरू के १८ श्लोकों को पढ़ के या तो ऊब जाते, या खयाल करते हैं कि भगवान की विभूति या प्रपंच-लीला के निरूपणवाले इस अध्याय में प्रायः आधे श्लोक बेकार ही क्यों दूसरी बातों में लगा दिये गये हैं, उन्हें अब पता लग गया होगा कि इस बात की जरूरत थी। असल में यों तो इस विषय की अहमियत को जनसाधारण समझी नहीं सकते। इतनी भूमिका के बाद भी उनके दिमाग में यह बात शायद ही जमे। उनके लिये तो यह दूसरी दुनिया की विदेशी जैसी चीज ही है। फिर मन लगे तो कैसे लगे ? इसीलिये इतनी भूमिका भी कुछ विशेष काम उनके दिमाग पर कर पाती नहीं। मगर अर्जुन के बारे में यह बात न थी। वह तो बहुत कुछ ऊँचा उठ चुका था। इसीलिये इस भूमिका ने उसे न सिर्फ प्रोत्साहित किया; बल्कि उसमें चस्का भी पैदा कर दिया। फलतः वह इसमें लिपट ही तो पड़ा। नतीजा यह हुआ कि दसवें के शेष और पूरे ग्यारहवें अध्याय में उसने कृष्ण से "कह सुनाऊँ" तथा "कर दिखाऊँ" दोनों करवा के ही छोड़ा।

एक बात यहीं पर और भी जान के आगे बढ़ने में अच्छा होगा। "एतां विभूतिं योगं च" (१०।७) में तथा "विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च" (१०।१८) में एक ही साथ योग और विभूति शब्द आये

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हैं। इसके सिवाय सोलहवें में भी कई बार विभूति शब्द आया है। इन दोनों में विभूति का अर्थ तो 'बहुत रूप हो जाना या बन जाना' साफ ही है। जो कुछ कहा गया है उससे भी साफ हो जाता है। मगर उसी के साथ जो योग है उसका स्पष्टीकरण इस अध्याय में कहीं नहीं मिलता। अन्त के ४०-४१ श्लोकों में भी कई बार विभूति शब्द ही आया है, न कि योग। इससे यही मालूम होता है कि इस अध्याय में विभूतियों का ही वर्णन है, विस्तार है। इसीलिये तो इसे विभूतियोग नामक अध्याय कहते हैं, जैसा कि औरों को ज्ञान-विज्ञान योग आदि नाम दिये गये हैं।

तब प्रश्न होता है कि यहाँ योग का अर्थ आखिर है क्या? योग शब्द जिन अर्थों में गीता में बार-बार आया है वह तो इसका अर्थ है नहीं। इसके तो ज्यादे से ज्यादा चमत्कार, करिश्मा, ऐश्वर्य आदि ही अर्थ किये जा सकते हैं। मगर तब क्या विभूति से काम नहीं चल जाता कि इसकी भी जरूरत हुई? यह प्रश्न उठता है। आखिर विभूति भी तो चमत्कार या करिश्मा ही है। जादूगर जब नई-नई चीजें बताता है तो उसे करिश्मा ही तो कहते हैं।

असलमें दसवें और ग्यारहवें अध्यायों में यों ऊपर से देखने से दो जुदी बातों का वर्णन मालूम होने पर भी इनके विषय को एक ही मान के उसे दो भागों में केवल बाँटा गया है। इनमें पहला है 'कह सुनाऊँ' वाला और दूसरा 'कर दिखाऊँ' का। दोनों को एक ही समझने के लिये ही यहीं पर एकही साथ विभूति और योग शब्द शुरू में ही कहे गये हैं। यही कारण है कि विभूति के खतम होते ही, 'कह सुनाऊ' के पूरा होते ही अर्जुन ने ग्यारहवें में चटपट 'कर दिखाऊँ'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

के बारे में प्रश्न कर दिया है और जरा भी देर न की है। कृष्ण के भी 'कर दिखाने' का उसके नवें श्लोक से शुरू करने के ठीक पहले आठवें के अन्त में "दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्" में योग आ गया है। जो कुछ दिखाया गया है उसे ही वहाँ ईश्वरीय योग कहा है। इससे स्पष्ट है कि विश्वरूप का दिखाना ही योग है। दिखाने के भीतर ही देखना भी आ जाता है। इसीलिये विश्वरूप दर्शन में दर्शन का अर्थ देखना-दिखाना दोनों ही है। अतएव दसवें के "न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं" (१०।२) में जो प्रभव शब्द है उसका अर्थ प्रभुता या ऐश्वर्य करके उसके भीतर विभूति और योग दोनों को ही समझना होगा। कृष्ण के कहने का अभिप्राय यही है कि मैं किस प्रकार इस विश्वप्रपंच को बनाता और फैलाता हूँ इसे देवता, महर्षि आदि कोई भी ठीक-ठीक नहीं जानते, नहीं जान सकते। जानें भी कैसे ? यदि उस समय होते तब न ? इन्हें तो मैंने ही उसी सिलसिले में पीछे से बताया है। इस प्रभव शब्द का अर्थ उत्पत्ति या उत्पत्ति-स्थान आदि करना उचित नहीं है। उसमें वह मजा नहीं आता जो हमारे बताये अर्थ में है।

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

श्रीभगवान बोले—हे महाबाहो, मेरी और भी (एक) बड़ी बात सुनो, जिसे मैं तुम्हारे हित के खयाल से तुम्हें (केवल)इसीलिए कहूँगा कि तुम्हें मजा आ रहा है।१।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥

मैं विश्वप्रपंच कैसे फैलाता हूँ इसे न तो देवगण जानते हैं और न महर्षि लोग ही । क्योंकि मैं ही तो सभी देवताओं और महर्षियों का बनाने वाला ठहरा ।२।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

मनुष्यों में जो (बिरला ही) पूर्ण जानकार होता है वही मुझ अजन्मा, अनादि और सभी प्रपंच को बनाने-चलाने वाले को अच्छी तरह जानता है (और इसीलिए) सभी पापों से छुटकारा (भी) पाता है ।३।

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥४॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥५॥

विवेकशक्ति, विवेक, मोह का संसर्ग कतई न होना, क्षमा, सत्य इन्द्रियों पर काबू, मन पर काबू, सुख, दुःख, पदार्थों का होना, न होना, भय, अभय, अहिंसा, सब में समबुद्धि या सबके साथ समानता का व्यवहार, सन्तोष, तप, दान, यश, अपयश (आदि) ये सभी विभिन्न पदार्थ मैं ही पैदा करता हूँ ।४।५।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सबसे पूर्व या सृष्टि के आरम्भ के सात महर्षि और चार मनु— ये सभी—मुझी से मेरे मन के संकल्प से पैदा हुये थे, जिनने दुनियाँ में ये प्रजाएँ पैदा कीं—यह जनता पैदा की ।६।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।।७।।

मेरी अभी कही जानेवाली इस विभूति और योग का जो ठीक साक्षात्कार कर लेता है उसे सुदृढ़ योग को प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय (जरा भी) नहीं है ।७।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ।।८।।
मच्चित्ता मद्गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।९।।

मैं ही सभी चीजों का मूल स्रोत हूँ और मुझी से सभी चीजें बाहर जाती हैं, विवेकी लोग यही समझके पूर्ण श्रद्धा-भक्ति के साथ मुझे भजते हैं। अपने चित्त और इन्द्रियों को मुझी में लगाके परस्पर एक दूसरे को समझाते-बुझाते और निरन्तर मेरी ही चर्चा करते हुए वे मुझमें ही रमते और सन्तुष्ट रहते हैं ।८।९।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।१०।।
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।११।।

निरन्तर मुझी में लगे (और) मुझे ही प्रेमपूर्वक भजने वाले उन लोगों को वह आत्मसाक्षात्कार रूपी बुद्धियोग प्राप्त करवा देता

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त हो जाते हैं। (यह यों होता है कि) उन्हीं पर अनुकम्पा करके (तथा) उनकी आत्मा के रूप में ही विदित होके उस प्रचण्ड ज्ञानदीप से उनके अज्ञान-मूलक हृदयान्धकार को खत्म कर देता हूँ।१०।११।

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

अर्जुन कहने लगा—आप ही परब्रह्म, ज्योतियों की ज्योति और पवित्र से भी पवित्र हैं। आपको ही सभी ऋषि (तथा खासकर) देवर्षि नारद, असित, देवल (और) व्यास सनातन दिव्य पुरुष, आदि देव—देवताओं के भी देव—अजन्मा और सर्वव्यापी बताते हैं। आप स्वयं भी तो मुझसे यही कह रहे हैं।१२।१३।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥
स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

हे केशव, आप जो कुछ मुझे बता रहे हैं मैं उसे सही मानता हूँ। भगवन्, आपकी व्यक्ति—आपकी हस्ती—को ठीक-ठीक न तो देवता ही जानते हैं और न दानव लोग ही। हे पुरुषोत्तम, हे भूतेश, हे देवदेव, हे जगत्पति, आप खुद अपने आपही अपने को जानते हैं।१४।१५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वंव्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥

(इसलिए) आप अपनी सभी दिव्य विभूतियों को जरूर ही कह सुनाइये—उन्हीं विभूतियों को जिनके द्वारा सभी जगहों में व्याप्त होके सर्वत्र मौजूद हैं ।१६।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वांसदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन् मया ॥१७॥

हे योगिन्, आपका किस प्रकार सदा चिन्तन करते हुए (आपको) जान सकूँगा ? और भगवन्, (खास तौर से) किन-किन पदार्थों में आपका चिन्तन किया जाना चाहिए ? ।१७।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८॥

हे जनार्दन, अपनी विभूति और योग—दोनों ही—को और भी विस्तार से कहिये। क्योंकि (आपके वचनरूपी) अमृत—मधुर वचनों—को सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती है ।१८।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९॥

श्री भगवान ने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, लो अभी-अभी अपनी प्रधान दिव्य विभूतियों को (संक्षेप में) तुम्हें सुनाये देता हूँ। (क्योंकि) मेरी (इन विभूतियों के) विस्तार का अन्त हई नहीं ।१९।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥

हे गुडाकेश, सब पदार्थों के भीतर—हृदय, अन्तःकरण या मर्म में—रहनेवाली आत्मा मैं ही हूँ। पदार्थों का आदि, मध्य और अन्त भी—उनका सबकुछ—मैं ही हूँ।२०।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

(बारह) सूर्यों में विष्णु नामक सूर्य मैं हूँ, सभी प्रकाशवान् पदार्थों में किरणवाला सूर्य, (उनचास) पवनों में मरीचि नामक पवन और (रात में जगमगाने वाले) तारों में चन्द्रमा मैं हूँ।२१।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

वेदों में सामवेद हूँ, देवताओं में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ (और जीवधारियों में) चेतनता हूँ।२२।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

(ग्यारह) रूद्रों में शंकर हूँ, यक्ष-राक्षसों में कुबेर (हूँ), आठ वसुओं में अग्नि हूँ (और) चोटी वालों में सुमेरु (हूँ)।२३।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४

हे पार्थ, पुरोहितों में (सबके) मुखिया बृहस्पति मुझी को समझो। सेनापतियों में कार्तिकेय और जलाशयों में समुद्र मैं हूँ।२४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ।।२५।।

महर्षियों में भृगु (और) वाणी में एक अक्षर—ॐकार—मैं हूँ। यज्ञों में जपयज्ञ और न हिलने-डोलने वालों में हिमालय हूँ।२५।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।२६।।

सभी वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ नामक गन्धर्व और सिद्धों में कपिल मुनि (मैं हूँ) ।२६।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।।२७।।

घोड़ों में (अमृत के साथ उत्पन्न) उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा मुझे समझो, बड़े हाथियों में ऐरावत—इन्द्र के हाथी—और मनुष्यों में राजा (भी मुझे ही समझो) ।२७।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ।।२८।।

हथियारों में वज्र (तथा) दुही जाने वालियों में कामधेनु हूँ। सन्तानोत्पादक काम मैं हूँ (और) सर्पों—रेंगनेवालों—में वासुकी नामक सर्प मैं हूँ ।२८।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ।।२९।।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

नागों यानी दिव्य—विलक्षण—सर्पों में शेषनाग हूँ (और) जल-जन्तुओं में वरुण। पितरों में अर्यमा नामक पितर और (लोगों को सुधारने के लिए) दंड करने वालों में यम हूँ।२९।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

दैत्यों में प्रह्लाद और गिनने या हिसाब लगाने वालों में काल—समय—मैं हूँ। पशुओं में सिंह और पक्षियों में गरूड़ हूँ।३०।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥३१॥

पवित्र करने, सुखाने या चलनेवालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूँ। जलजन्तुओं में मगर और सोतों में भागीरथी गंगा हूँ।३१।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥

हे अर्जुन, सृष्टियों का आदि, मध्य और अन्त मैं हूँ। (सभी) विद्याओं में अध्यात्मविद्या—आत्मज्ञानशास्त्र—(और) विवाद करने वालों में वाद मैं हूं।३२।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥३३॥

अक्षरों में अकार और समासों में द्वन्द्व मैं हूँ। मैं ही अविनाशी काल हूँ (और) जगत को कायम रखने वाला सर्वव्यापी भी मैं हूँ।३३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधाधृतिः क्षमा ॥३४

सबको मारने वाली मौत और आगे होने—पैदा होने या प्रगति करने—वालों की उत्पत्ति तथा प्रगति मैं हूँ। स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा (भी मैं हूँ) ।३४।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

(अनेक प्रकार के) सामों में वृहत् नामक साम और छन्दों में गायत्री हूँ। महीनों में मार्गशीर्ष—अगहन—और ऋतुओं में बसन्त हूँ ।३५।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३६॥

छलनेवालों में जूआ (और) तेजस्वियों में तेज हूँ। (विजयियों का)विजय, (उद्योगियों का) उद्योग (और) सात्विक पदार्थों का सत्त्वगुण मैं हूँ ।३६।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पांडवानां धनंजयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशनाः कविः ॥३७॥

वृष्णियों में कृष्ण (और) पांडवों में अर्जुन हूँ। मुनियों में व्यास और कवियों में कवि शुक्राचार्य हूँ ।३७।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

दूसरों को दवानेवालों में दण्ड हूँ। (और) विजयेच्छुओं में नीति हूँ। गोपनीयों में मौन (और) ज्ञानियों में ज्ञान मैं हूँ ।३८।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥३६॥

हे अर्जुन, सभी पदार्थों का जो बीज है सो भी मैं ही हूँ। (क्योंकि) स्थावर और जंगम पदार्थों में ऐसा एक भी नहीं है जो मेरे बिना टिक सके ।३६।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥४०॥

हे परन्तप, मेरी दिव्य विभूतियों का आरपार नहीं है। यह तो मैंने विभूतियों का विस्तार (केवल) संक्षेप में (नमूने के तौर पर ही) कहा है ।४०।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥४१॥

(सबका निचोड़ यही है कि) जो-जो पदार्थ चमत्कार वाले, गुणवाले या शक्तिशाली हों उन-उनको मेरे ही तेज के अश से ही बने मानो ।४१।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

अथवा, हे अर्जुन, इस तरह बहुत बातें जानने से तुम्हारा क्या होगा? (तुम यही समझ लो कि) इस समूचे जगत् को मैं अपने एक कोने में रखे हुये पड़ा हूँ ।४२।

इति० विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥



RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ग्यारहवाँ अध्याय

अर्जुन ने दसवें अध्याय में जो विराट् रूप का विस्तृत विवरण सुना उससे उन्हें ऐसी आतुरता हुई कि उसे जल्द से जल्द आँखों से देखने को लालायित हो उठे। चुनचुन के प्रायः सभी पदार्थों को भगवान का रूप बताना तो केवल कहने की एक रीति है। चमत्कार-युक्त पदार्थों पर ही तो पहले दृष्टि जाती है और एक बार जब उन्हें परमात्मा का रूप मान लिया, जब एक बार उनमें वह भावना हो गई, तब तो आसानी से सभी में वही भावना हो सकती है। कहने का कौशल यही है कि इस बुद्धिमत्ता से बातें बतायें कि कुछी बातें कहने से काम चल जाय और सुननेवाला बाकियों को खुदबखुद समझ जाये। कहते हैं कि किसी ने दूसरे से पूछा कि तुम्हारा क्या नाम है? उत्तर मिला कि तिनकौड़ी। फिर प्रश्न हुआ कि बाप का? जवाब मिला छकौड़ी। इसके बाद तो पूछनेवाले ने स्वयमेव कह दिया कि बस, ज्यादा कहने का काम नहीं। अब तो मैं खुद तुम्हारे सभी पुरुषों तक के नाम जान गया। क्योंकि इसी प्रकार दूना करता चला जाऊँगा। ठीक वही बात यहाँ भी हुई है। जब सिंह को भगवान मान लिया, तो शेष पशुओं को भगवान अलग मानने के लिये कोई दार्शनिक युक्ति रही नहीं जाती। सभी तो एक से हाड़-मांस वाले हैं। यही बात अन्य पदार्थों में भी लागू है। इस प्रकार चुनेचुनाये पदार्थों के नाम लेने से ही सबों का काम हो गया। यह भी बात है कि आखिर जब आखों से प्रत्यक्ष देखने का मौका

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आये तो सब्रों को जुदा-जुदा देखना असंभव भी है। थोड़े से चुने पदार्थों को ही देखते-देखते तो परीशानी हो जायगी। लाखों तरह के पदार्थ जो ठहरे। इसलिये नमूने के रूप में जिन्हें दसवें में गिनाया है, ग्यारहवें में उन्हीं को देखने में आसानी होगी, मजा भी आयेगा और बात दिल में बैठ भी जायगी कि ठीकही तो कहते हैं। जैसा कहा वैसा ही देखते भी तो हैं। जरा भी तो फर्क है नहीं। नहीं तो सबों का देखना असंभव होने से नाहक की परीशानी (Confusion) हो जाती और काम भी वैसा नहीं बनता।

इसीलिये आगे अर्जुन ने स्वयमेव कह दिया है कि भगवान्, आप जो कहते हैं वह अक्षरशः सही है। इसमें शक-शुभे की गुंजाइश है नहीं। हाँ, कमी यही रह गई है कि जरा इन्हें आँखों देख नहीं लिया है। तो क्या देख सकता हूं ? यदि हाँ, तो बड़ी कृपा हो, अगर आप दिखा दें। इस कथन से और चटपट प्रश्न कर देने से भी उनकी आतुरता का पता चल जाता है। जो देखा नहीं, सुना है, उसको देख लेना ही काफी है, यही उनका आशय है। इससे अब तक के मनन की पुष्टि होके निदिध्यासन में प्रत्यक्ष सहायता भी हो जायगी। फिर तो स्वतंत्र रूप से युद्ध के बाद अर्जुन यही काम कर सकेंगे। ग्यारहवें अध्याय के पढ़ने से पता चलता है कि कोई विशेषज्ञ अपनी प्रयोगशाला (Laboratory में बैठ के उन्हीं बताई बातों का प्रयोग (experiment) शिष्यों के सामने कर रहा है। ताकि उन्हें वे बखूबी हृदयंगम कर लें, जिन्हें अबतक समझाता रहा है। अर्जुन को शक था कि भला ये चीजें देख सकेंगे कैसे ? इसीलिये उसने कहा भी। जनसाधारण भी तो यही मानते हैं कि भला कहीं दो हवाओं—औक्सी न तथा हाईड्रोजन—के समिश्रण से ही पानी बन सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मगर प्रयोगशाले में जब उनकी आँखों के सामने विलक्षण आला और यंत्र लगा के प्रत्यक्ष दिखाया जाता है तब मान जाते और आश्चर्य में डूब जाते हैं। अर्जुन की भी वही दशा हुई। आश्चर्य-चकित होने के साथ ही वह घबराया भी। क्योंकि यहाँ भयंकर और वीभत्स दृश्य भी सामने आ गये जो दिल दहलाने वाले थे। "दिव्यं ददामि ते चक्षुः", "न तु मां शक्यसे" (११।८) के द्वारा कृष्ण ने दिखाने के पहले अर्जुन को दिव्य दृष्टि क्या दी, मानों कोई विलक्षण आला या यंत्र आँखों पर लगा दिया।

हाँ, तो देखने की ही आतुरता से चटपट—

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥
भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

अर्जुन बोल उठा—मेरे ऊपर दया करके आपने अध्यात्म नामक जो परम गोपनीय बात कही है उससे मेरा यह मोह तो खत्म हो गया। हे कमलनयन, मैंने आपके मुख से पदार्थों के उत्पत्ति-प्रलय विस्तार के साथ सुने और आपका विकार शून्य माहात्म्य भी (सुन लिया) ।१।२।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

हे परमेश्वर, हे पुरूषोत्तम, जैसा आप कहते हैं वह तो ठीक ही है। (अब केवल) मैं आपका वह ईश्वरीय रूप देख लेना चाहता हूँ। प्रभो, यदि आप ऐसा मानते हों कि मैं उसे देख सकता हूँ तो, हे योगेश्वर, अपना अविनाशी रूप मुझे दिखाइये।३।४।

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

श्रीभगवान कहने लगे—हे पार्थ, मेरे सैकड़ों (और) हजारों तरह के बहुरंगी, अनेक आकार वाले दिव्य रूपों को देख लो।५।

पश्यादित्यान्वसून् रूद्रानश्विनौ मरूतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

हे भारत, (द्वादश) आदित्यों, (आठ) वसुओं, (एकादश) रूद्रों, दोनों अश्विनी कुमारों (तथा उनचास) मरूतों को देख लो (और) पहले कभी न देखे बहुतेरे आश्चर्यजनक पदार्थ भी देख लो। हे गुडाकेश, आज यहीं पर मेरे शरीर में ही चराचर जगत को एक ही जगह देख लो और जो कुछ भी देखना चाहते हो (सो भी देख लो) लेकिन अपनी इन्हीं आँखों से तो मुझे (उस तरह) देख सकते नहीं। (अतः) तुम्हें दिव्य दृष्टि दिये देता हू। (फिर बेखटके) मेरा ईश्वरी योग या करिश्मा देख लो।६।७।८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

संजय ने (धृतराष्ट्र से) कहा—हे राजन्, महायोगेश्वर कृष्ण ने ऐसा कहके चटपट अर्जुन को (अपना इस तरह का) विलक्षण ईश्वरीय रूप दिखा ही तो दिया ।९।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

उस रूप में बहुत ज्यादा मुँह और आँखें हैं, बहुतेरी निराली दर्शनीय बातें हैं, बहुत से दिव्य अलंकार हैं, अनेक प्रकार के दिव्य (एवं) सजे-सजाये हथियार हैं, दिव्य मालायें (तथा) वस्त्र सजे हैं, दिव्य सुगन्धित पदार्थों का लेप लगा है। वह सब तरह से आश्चर्यमय, दिव्य, अनन्त और विश्वव्यापक है ।१०।११।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

अगर एक ही साथ आकाश में हजार सूर्य निकल पड़ें तो उनका जो प्रकाश हो वही (शायद) उस महात्मा की प्रभा के जैसा हो सकता है ।१२।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥१३॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

वहाँ उस समय देवताओं के भी देवता कृष्ण के शरीर में अर्जुन को एक ही जगह समूचा संसार अनेक रूप में विभक्त दिखाई पड़ा ।१३।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ॥१४॥

अब तो धनंजय—अर्जुन—के रोंगटे खड़े हो गये (और) वह आश्चर्य में डूब गया। (फिर) सर झुका भगवान को प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए कहने लगा ।१४।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंधान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

अर्जुन कहने लगा—हे देव, आपके देह के भीतर सभी देवताओं को, विभिन्न पदार्थों के संघों को, कमल के आसन पर बैठे सबों के शासक ब्रह्मा को, सभी ऋषियों को और अलौकिक सर्पों को देख रहा हूँ ।१५।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥१६॥

आपके अनेक बाहु, पेट, मुँह (एवं) आँखों से युक्त अनन्त रूप को ही चारों ओर देख रहा हूँ। हे विश्वेश्वर, हे विश्वरूप, न तो आपका अन्त, न आदि और न मध्य ही देख पाता हूँ ।१६।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ।१७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मुकुट, गदा और चक्र धारण किये, तेज की राशि, चारों ओर प्रकाश फैलाये, जिसपर नजर टिक न सके ऐसा, सब तरफ दहकते सूर्य एवं अग्नि के समान देदीप्यमान और अपरम्पार आपही को देखता हूँ ।१७।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

तुम्हीं जानने योग्य परम अक्षर अर्थात् ब्रह्म (हो), तुम्हीं इस विश्व के आखिरी आधार (हो), तुम्हीं विकारशून्य हो, सनातन-धर्म के रक्षक हो (और) मेरे जानते तुम्हीं सनातन पुरुष हो ।१८।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।१९।

आदि, मध्य, अन्त—तीनों—से रहित, अनन्त शक्तिशाली, अनन्त बाहु वाले, चन्द्र-सूर्य जिसके नेत्र हों दहकती आग जैसे जिसके मुख हों और जो अपने तेज से इस विश्व को तपा रहा हो, मैं आपको ऐसा ही देख रहा हूँ ।१९।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥२०॥

आकाश और जमीन के बीच की इस जगह को और सभी दिशाओं को भी अकेले आपही ने घेर रखा है । इसीलिये हे महात्मन्, आपके इस उग्र रूप को देख के सारी दुनियाँ काँप रही है ।२०।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥२

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

देखिये न, (कुछ) देवताओं के झुंड आपके भीतर घुसे जा रहे हैं, (और) कुछ मारे डर के हाथ जोड़े प्रार्थना कर रहे हैं। महर्षियों एवं सिद्धों के दल (भी) 'स्वस्ति हो' की पुकार के साथ बहुत ज्यादा स्तुतियों के द्वारा आपका गुणगान कर रहे हैं।२१।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

जो भी रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, विश्वदेव, दोनों अश्विनी कुमार, मरुत, पितर तथा गन्धर्वों, यक्षों एवं असुरों के गिरोह के गिरोह हैं सभी विस्मित हो के आप ही को देख रहे हैं।२२।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

हे महाबाहु, बहुत मुँहों तथा नेत्रों वाला, अनेक बाहुओं, जंघों एवं पाँवों से युक्त, बहुतेरे पेट वाला और बहुतसी डाढ़ों के करते भयंकर यह तुम्हारा विशाल रूप देख के लोग घबराये हुए हैं और मैं भी व्यथित हूँ।२३।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो।२४।

हे विष्णो, आकाश चूमते हुए, चकमक, रंगबिरंगे, मुँह फैलाये तथा जलते हुये लम्बे नेत्रों से युक्त आपको देख के मेरी आत्मा दहल उठी है और मुझमें न तो धैर्य है और न चैन।२४।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसंनिभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

डाढ़ों के करते विकराल (तथा) प्रलयकाल की अग्नि के समान (दहकते) हुए आपके मुँहों को देख के ही मुझे न तो दिशायें सूझती हैं और न चैन ही मिल रहा है। (इसलिए) हे देवेश, हे जगदाधार प्रसन्न हो जाइये—कृपा कीजिय।२५।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥२६॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमांगैः॥२७॥

राजाओं के गिरोह के साथ ही ये सभी धृतराष्ट्र के बेटे आपके भीतर—पेट में—तेजी से घुसे जा रहे हैं। भीष्म, द्रोण और कर्ण भी हमारे दल के प्रमुख योद्धाओं के साथ, डाढ़ों से विकराल दीखने वाले आपके भयंकर मुँहों में, तेजी से दौड़े जा रहे हैं। किसी-किसी की तो यह हालत है कि दाँतों के बीच में ही सट गये हैं और उनके सर चूर्ण-विचूर्ण नजर आ रहे हैं।२६।२७।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥२८॥

जिस तरह नदियों की बहुत सी तेज धारायें समुद्र की ही ओर दौड़ी चली जाती हैं, उसी तरह आपके धक्-धक् जलते मुखों में नरलोक के ये वीर बाँकुड़े घुसे जा रहे हैं।२८।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥२९॥

जिस प्रकार खूब तेज आग में फतिंगे बड़ी तेजी से घुस मरते हैं वैसे ही आपके मुखों में ये लोग भी बड़ी तेजी से घुस रहे हैं।२९।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥३०॥

(और) आप अपने जलते मुँहों में चारों ओरसे सभी लोगों को निगल के जीभ चाट रहे हैं ! हे विष्णो, आपकी उग्र प्रभाएँ अपने तेज से समस्त जगत् को घेर के खूब तप रही हैं ।३०।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

हे देवताओं में श्रेष्ठ, मैं आपको प्रणाम करता हूँ, आप प्रसन्न हों, (और भला) बतायें तो (सही कि) यह उग्र रूप वाले आप हैं कौन ? मैं आदि (पुरुष) आपको जानना चाहता हूँ । क्योंकि आपको क्या करना मजूर है यह मैं जान नहीं पाता हूँ ।३१।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥

श्रीभगवान कहने लगे—मैं लोगों का संहार करने वाला मोटा-ताजा काल हूँ (और) यहाँ लोगों का संहार करने में लगा हूँ । (इसीलिये) तुम्हारे बिना भी—तुम कुछ न करो तो भी—परस्पर विरोधी फौजों में जितने योद्धा मौजूद हैं (सभी) खत्म होंगे ही ।३२।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ॥
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥३३।

इसलिये, हे सव्यसाची (अर्जुन), तुम तैयार हो जाओ, यश लूट लो (और) शत्रु को जीत के समृद्धियुक्त राज्य (का सुख) भोगो। मैंने तो इन्हें पहले ही मार डाला है । (अतएव) केवल एक बहाना बन जाओ ।३३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४

मेरे हाथों (पहले ही) मरे-मराये द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्यान्य बीर बाँकुड़ों को तुम मार डालो, घबराओ मत (और) लड़ो। युद्ध में शत्रुओं को (जरूर) जीतोगे ।३४।

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

(तब) संजय (धृतराष्ट्र से) बोला—किरीटी (अर्जुन) कृष्ण की यह बात सुनके हाथ जोड़े काँपता हुआ कृष्ण को नमस्कार करके अत्यन्त भय के साथ रुँधे गले से पुनरपि कहने लगा ।३५।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥३६॥

अर्जुन बोला—हे हृषिकेश, (यदि) आपके गुणगान से संसार हर्ष-प्रफुल्लित होता और अनुरागी बनता है (तो) ठीक ही है (और अगर) राक्षस लोग (आपके) डर से इधर-उधर भागते फिरते हैं तथा सिद्ध लोगों के सभो संघ (आपका) अभिनन्दन करते हैं (तो यह भी उचित ही है) ।३६।

कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

हे महात्मन्, गुरुओं के भी गुरु (और) ब्रह्मा के (भी) आदि कारण तुम्हें वे प्रणाम क्यों न करें ? हे अनन्त, हे देवेश, हे जगन्नि

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

वास, स्थूल (एवं) सूक्ष्म (तथा) उससे भी परे जो अक्षर ब्रह्म है वह तुम्हीं हो ।३७।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

तुम आदि देव (और) सनातन पुरुष (हो), तुम्हीं इस विश्व के परम आधार (हो), तुम्हीं ज्ञाता, ज्ञेय और परम ज्योतिस्वरूप (हो)। हे अनन्तरूप, तुमने विश्व को व्याप लिया है ।३८।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ॥
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९।

वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति—ब्रह्मा, कश्यप, दक्ष आदि—और उनके भी दादा हो। आपको हजार बार नमस्कार है और पुनरपि आप ही को बार-बार नमस्कार है ।३९।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

हे समस्त जगत्स्वरूप, आपको आगे से नमस्कार, पीछे से नमस्कार, और सब ओर से नमस्कार है। आप अनन्तवीर्य तथा अमित पराक्रम वाले हैं। आप ही सभी पदार्थों के रगरग में व्याप्त हैं। इसीलिये सभी के स्वरूप ही हैं ।४०।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

साथी समझ के (और) आपकी महिमा को इस तरह न जानके (कभी) जो आपको अपमान के रूप में हे कृष्ण, हे यादव, हे साथी इस तरह मैंने प्रमाद से या प्रेम के चलते ही कह दिया हो, और हे अच्युत, हँसी-मजाक में जो घूमने-फिरने, सोने-बैठने या भोजन के समय अकेले में या लोगों के सामने आपका अपमान कर दिया हो, उसके लिये अपरम्पार महिमा वाले आप से क्षमा चाहता हूँ ।४१।४२।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥४३॥

हे संसार भरमें अतुल प्रभाव वाले, तुम इस चराचर संसार के पिता हो, पूज्य (हो) (और) गुरु के भी गुरु (हो) । तुम्हारी बराबरी का तो कोई हुई नहीं, बड़ा कोई कैसे होगा ? ।४३।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

इसीलिये साष्टांग प्रणाम करके ईश्वर और स्तुति-योग्य आपको खुश करना चाहता हूँ । हे देव, जैसे पुत्र का अपराध पिता, साथी का साथी और स्त्री का पति क्षमा कर देता है वैसे ही—आप मेरी भूलें भी क्षमा कर दें ।४४।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

जो कभी न देखा था उसे देख के मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं और भय से मेरा मन व्याकुल है । (इसीलिये) हे देव, हे देवेश, हे जगन्निवास, कृपा कीजिये (और) वही (पुराना) रूप मुझे फिर दिखाइये ।४५।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्त्ते ॥४६॥

(अभी) जो आप मुकुट (एवं) गदा लिये (तथा) चक्रधारी बने हैं (उसकी जगह) मैं आपको पहले ही की तरह देखना चाहता हूँ। हे चतुर्भुज, हे स्वामिन्, हे सहस्रबाहु, हे विश्वमूर्ति, (आप) वही (पुराना) रूप बन जाइये।४६।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

श्रीभगवान कहने लगे—हे अर्जुन, (तेरे ऊपर) प्रसन्न होके ही मैंने तुझे अपनी सामर्थ्य से यह (वही) तेजमय, अनन्त, मूलभूत, विलक्षण विश्वरूप दिखाया है जिसे तुझसे अन्य (किसी) ने भी पहले देखा न था।४७।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

हे कुरुवीर शिरोमणि, न वेद (पढ़ने) से, न यज्ञ (करने) से, न (सद्ग्रथों के) अध्ययन से, न दान से, न अन्य क्रियाओं से (और) न कठिन तपस्याओं से ही (इस) मनुष्य लोक में तुम्हारे अलावे दूसरा कोई मुझे इस रूप में देख सकता है।४८।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

मेरा यह ऐसा घोर रूप देख के तुम्हें (अब) व्यथा मत हो और घबराहट या किंकर्त्तव्यविमूढ़ता भी मत हो। (किन्तु) निर्भय

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

होके खुशी-खुशी तुम पुनरपि मेरे उसी रूप को यह अच्छी तरह देख लो ।४६।

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

संजय कहने लगा (कि), कृष्ण ने अर्जुन से ऐसा कहके (फौरन ही) अपना रूप फिर दिखा दिया और (इस तरह) सीधासादा स्वरूपवान बनके महात्मा कृष्ण ने उस डरे हुए अर्जुन को पुनरपि आश्वासन दिया ।५०।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेतः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

(इसपर फौरन ही) अर्जुन ने कहा (कि) हे जनार्दन, आपका यह सौम्य—सीधासादा—मानव रूप देखके मुझे अभी होश हुआ है और मिजाज भी ठीक हुआ है ।५१।

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥५२॥

(तब) श्रीभगवान कहने लगे (कि आज) तुमने जो मेरा रूप देखा है इसका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है । देवता लोग भी बराबर ही इस रूप के दर्शन की आकांक्षा रखते हैं ।५२।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तुमने अभी-अभी मुझे जिस तरह देख लिया है इस रूप में मैं वेद, तप, दान और यज्ञ (किसी भी उपाय) से देखा नहीं जा सकता ।५३।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥५४॥

हे अर्जुन, हे परन्तप, (किन्तु) अनन्य भक्ति से ही मुझे इस प्रकार जाना, आँखों देखा और उसी रूप में—वैसा ही स्वयं भी होके—उसमें प्रवेश किया (भी) जा सकता है ।५४।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥५५॥

(इसीलिये) हे पांडव, जो मेरे ही लिये—मदर्थ—कर्म करे, मुझी को अन्तिम (लक्ष्य वस्तु) माने, मेरा ही भक्त हो, आसक्तिशून्य हो और किसी भी पदार्थ से वैर न रखे, वही मुझे प्राप्त करता है ।५५।

इति श्री० विश्वरूपदर्शनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥



ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बारहवाँ अध्याय

यह तो पहले ही कह चुके हैं कि दसवें अध्याय में जिस योग का उल्लेख विभूति के साथ हुआ है वह विराट् दर्शन या विश्वरूपदर्शन का ही दूसरा नाम है। इसे प्रमाणित भी किया जा चुका है। यदि यह बात न होती तो जहाँ अन्य सभी अध्यायों की समाप्ति वाले वाक्य में 'सांख्ययोगः', 'कर्मयोगः' आदि लिख के सांख्य, कर्म प्रभृति के साथ योग का उल्लेख बराबर ही किया गया है, तहाँ केवल इसी ग्यारहवें अध्याय में सिर्फ 'विश्वदर्शनं' इतना ही क्यों लिखा जाता ? सभी प्रामाणिक भाष्यों एवं टीकाओं में यही पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जब यह विश्वरूप दर्शन निर्विवाद रूप से स्वयमेव योग है तो पुनरपि योग शब्द के नाहक पुनरुक्ति क्यों करना ? जहाँ विवाद की गुंजाइश हो वहीं उसका लिखा जाना ठीक था।

इस प्रकार विश्वरूप दर्शन की बात खत्म करके आगे बढ़ने की बात आती है। वही तेरहवें अध्याय में पाई भी जाती है। वहाँ उन्हीं पदार्थों का दार्शनिक ढंग से विश्लेषण तथा बिवेचन किया है जिन्हें ग्यारहवें में दिखाया गया है। यह बात वहीं विशेष रूप से बतायेंगे और दिखायेंगे कि मनन का सिलसिला क्यों नहीं टूटना चाहिये। बल्कि यह बात तो पहले भी कही चुके हैं कि निदिध्यासन, समाधि, या प्रयोग के बाद भी मनन की जरूरत होतीही है। नहीं तो सारी बातें भूल ही जायँ और किया-कराया सब कुछ चौपट हो

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जाय। इसीलिये उससे पूर्व का यह बारहवाँ अध्याय भी मनन के ही रूप में प्रसंग से आ गया है। यह प्रसंग भी ग्यारहवें के अन्त के चार और खासकर आखिरी दो श्लोकों के ही चलते आया है। इस प्रासंगिक बात को बीच में पूरा कर लेना भी जरूरी था। तभी असली बात का सिलसिला ठीक-ठीक चल सकता था।

बात यों हुई कि कृष्ण ने अपना साकार विराट् रूप दिखाके अर्जुन से साफ कह दिया कि इसके जानने और देखने का कोई दूसरा उपाय नहीं है, सिवाय इसके कि अनन्य-भक्ति की जाय। उनने यह भी कह दिया कि जो कुछ भी किया जाय वह भगवदर्पण बुद्धि से ही। जबतक यह न होगा यह दर्शन असभव है। यह ठीक है कि सिर्फ दर्शन होके ही खत्म हो न जायगा। किन्तु दर्शक को मुक्ति भी मिलेगी। फिर भी इस दर्शन के रास्ते मुक्ति तक पहुँचना दुर्लभ चीज है। इससे अर्जुन के दिल में फौरन ही यह खयाल होना जरूरी था कि ऐं, कृष्ण तो इसी साकार की उपासना और भक्ति को यज्ञादि से भी बड़ी चीज मानते तथा इस साकार दर्शन को दुर्लभ कहते हैं। मगर यहाँ तो बराबर ही देखा-सुना जाता है कि निराकार ब्रह्म में ही विवेकी लोग दिन-रात लगे रहते हैं। आखिर ऐसा क्यों होता है? यदि यही उत्तम मार्ग है तो लोग उसमें क्यों पड़ते हैं? यह भी नहीं कि मामूली लोग ही उधर जाते हैं। नहीं, नहीं। वह तो बड़े-बड़े अगड़धत्तों और विवेकियों का ही मार्ग है। बल्कि जनसाधारण के लिये तो वह दुर्लभ ही है। इसीलिये यह तो मानना ही होगा कि वह मार्ग भी उत्तम ही है। खुद कृष्ण ने भी तो पहले उसपर बहुत ही ज़ोर दिया है। फिर उत्तम क्यों न हो? मगर अभी-अभी इनने जो कुछ कह दिया उससे तो साकार की उपासना ही अच्छी साबित होती हैं! यह तो अजीब घपला है! यह पहेली तो निराली है!

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

इसीलिये उसने चटपट कृष्ण से पूछ ही तो दिया कि बात क्या है ? रास्ते तो दोनों आपके ही बताये हैं। इसीलिये अब साफ-साफ कहिये न कि इन दोनों में कौन अच्छा है ? इन दोनों पर चलने वालों में जोई अच्छे और कुशल होंगे मैं उन्हीं को पसन्द करुँगा। 'योग-वित्तमाः' शब्द देने का भी मतलब है। योग तो उपाय ही ठहरा, जिसे मार्ग कहिये या रास्ता। इन दोनों मार्गों के जानकार और इनपर अमल करने वाले लोग योगवित् हुए, यह भी ठीक ही है। मगर दोनों में ज्यादा कुशल कौन हैं, अच्छे कौन हैं, योगवित्तम कौन हैं यही बता दीजिये तो काम चले, यही आशय अर्जुन का है। दर-असल ग्यारहवें अध्याय के समूचे प्रसंगमें अन्त के वचनों को सुनके ही अर्जुन को एकाएक यह खयाल हो आया और उसने फौरन उसे जाहिर कर दिया। उसने बहुत ज्यादा इस बारे में सोचा-विचारा नहीं। नहीं तो शायद उसे ऐसा पूछने की जरूरत होती ही नहीं। उसे खुदबखुद सन्तोष और समाधान हो जाता।

क्योंकि छठें अध्याय के बाद भी कृष्ण ने निराकार आत्मा में लगने तथा उसके अनन्य चिन्तन की बात कही ही है। छठें अध्यायमें या उससे पहले तो यह बात खूब ही आई है। सांख्ययोग तो दरअसल यही है भी और उसी से गीता का श्रीगणेश हुआ है। ज्ञान का जो रूप पहले भी और खासकर चौथे तथा छठें अध्याय में आया है वह कितना महत्वपूर्ण है! उसकी प्राप्ति के लिये यत्न करने पर भी कितना जोर दिया है! यही नहीं। यदि ग्यारहवें अध्याय के अन्त वाले इन श्लोकों को ही देखें तो उनमें क्या लिखा है ? उनमें यह कहाँ कहा गया है कि ज्ञानमार्ग या निराकार ब्रह्म की समाधि से भी यह

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

साकार चिन्तन या सगुण की भक्ति श्रेष्ठ है ? वहाँ तो इतना ही कहा है कि वेद, तप, दान और यज्ञ से भी यह दर्शन होनेको नहीं। इसलिये अनन्य भक्ति करो। यह तो नहीं कहा कि ज्ञान और समाधि से भी यह होनेको नहीं। यदि वेद, तप, दान और यज्ञ से इस उपासना को श्रेष्ठ बताया, तो बुरा क्या किया ? यह तो ठीक ही है। ये चारों तो बेकार हैं यदि इनके करते भगवान में भक्ति न हो। यह भी नहीं कि यज्ञ शब्द से ज्ञान भी लिया जाय। ऐसा करना तो दूर की कौड़ी लाना हो जायगा। हम तो यह भी कह चुके हैं कि ग्यारहवें अध्याय का यज्ञ शब्द ज्ञान को छोड़ के और यज्ञों को ही,और आमतौर से प्रसिद्ध यज्ञों को ही बताता है। जिस ज्ञान से इस भक्ति को तर्जीह देनी हो, जिससे इसे श्रेष्ठ कहना हो उसीका नाम सीधे न लिया जाकर यज्ञ के रूप में ही उसे लाके उससे इसकी विशेषता बताई जाय, यह भी निराली समझ का काम है। जब आगे बारहवें में स्पष्ट ही वही बात अर्जुन कहता है, तो कृष्ण को उससे पहले कहने में क्या हिचक हो सकती थी, यदि उनका' वही आशय होता ?

इसीलिये अगत्या मानना ही होगा कि कृष्ण का ऐसा कोइ आशय न था। नहीं तो साफ ही बोल देते। सो भी तीसरे अध्याय में अर्जुन के यह कहने के बाद, कि गोलमोल बातें कहके, ऐसा लगता है कि, आप मुझे घपले में डाल रहे हैं, कृष्ण के लिये यह जरूरी हो गया था कि स्पष्ट कहें। उनने बराबर ऐसा ही किया भी है। इसीलिये पुनरपि अर्जुन को यह इल्जाम लगाने का मौका नहीं मिल सका है। मगर अगर ऐसा ही मानें, **जैसा कि** कुछ लोग कहते हैं, तब तो यहीं

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पर उस इलजाम का सुन्दर मौका था और अर्जुन को वही कहना भी चाहता था। लेकिन यह तो अर्जुन भी नहीं कहता है कि साकार उपासना को कृष्ण ने श्रेष्ठ कहा है। वह तो इतना ही मानता है कि दोनों ही पर कृष्ण का जोर काफी है। मगर ग्यारहवें में प्रसंग साकार का ही है। इसीलिये उसने खुद पूछा कि आया दोनों रास्ते बराबर ही हैं या इनमें कोई श्रेष्ठ भी हैं। दोनों पर बराबर ही जोर देना उसे मालूम हुआ था जरूर। फिर भी हरेक तो दोनों को कर नहीं सकता। इसीलिये दोनों में एक को उसे चुनना ही होगा। इसीसे वह पूछता भी है कि कौन सा एक अच्छा है।

अच्छा, मान लें कि अर्जुन दोनों में किसी एक की विशेषता ठीक ही समझ न सका था। इसीलिये तो उसने पूछा। फिर भी कृष्ण ने उत्तर में साकारोपासना को उत्तम करार दे दिया। लेकिन यह भी अजीब बात है। ग्यारहवें के अन्त में साकार की ही बात संभव थी। उसी का तो वहाँ प्रसग ही था। इसलिये स्वभावतः अर्जुन का झुकाव उसी ओर होना था। ताहम निश्चय न कर सकने के कारण ही उसने पूछ दिया। इतना तो मानना ही होगा। किन्तु जरा यह भी तो सोचें कि आखिर वह पूछता ही क्या है। यही न, कि दोनों में योगवित्तम कौन हैं? और योग का अर्थ "समत्वं योग उच्यते" तो हो नहीं सकता। क्योंकि उसमें छोटे-बड़े का क्या प्रश्न, उत्तम मध्यम की क्या वात? वह तो एक ही तरह का होता ही है। और दोनों ही योगी हों यह तो गैरमुमकिन भी है। योग के मूल में तो आत्मदर्शन है न? वह साकारोपासक को होगा ही कैसे? तब तो यह उपासना ही बेकार होगी। इसलिये यहाँ योग का अर्थ उपाय, रास्ता या मार्ग

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ही मानना होगा। हम तो कही चुके हैं कि योग का उपाय अर्थ भी होता ही है। अर्जुन के पूछने का तो केवल इतना ही आशय है कि कल्याण का मार्ग जानते हैं तो दोनों ही। मगर उन जानने वालों में कुशल कौन है ?

असल में मार्ग तो सबके लिये एक होता नहीं। वह तो यौग्यता या अधिकार के हिसाब से ही जुदा-जुदा होता है। मार्ग जाननेवाले की कुशलता का भी यही मतलब होता है कि जिसे जिसके योग्य समझे उसे वही बताये; न कि सब धान पूरे बाईस पसेरी ही तौलने लगे। तब तो अनर्थ ही होगा। किसी के लिये उसकी योग्यता के अनुसार जो मार्ग सर्वोत्तम हो सकता है वही दूसरे के लिये बेकार या हानिकारक भी हो सकता है इसीलिये चतुर उपदेशक और जानकार की जरूरत होती है। अर्जुन के पूछने का यही आशय है। कृष्ण ने उत्तर भी इसी दृष्टि से दिया है। जनसाधारण के लिये तो साकारोपासना ही श्रेष्ठ है। कारण, निराकार की बात उनकी पहुँच के बाहर की ठहरी। जंगल में फल पके भी तो गाँव वालों के किस कामके ?

कृष्ण के उत्तर का यही आशय है कि जनसाधारण को वहीं से शुरू करना होगा। उनके लिये वही श्रेष्ठ है, सर्वोपरि है। निराकार वाले तो बिरले ही होते हैं। उस दशा में तो लोग अपने आप पहुँच भी जाते हैं। इसलिये उसपर जोर देने की अपेक्षा इसी पर जोर देना उचित भी है। जनसाधारण की, आम लोगों की ही बात जो ठहरी। इसीलिये यदि ज्ञान-मार्ग से इसे उत्तम कहा है तो उसका ऊपर लिखा आशय समझ लेने से भ्रम न होगा। इसी बात को अर्थवाद की रीति, प्ररोचना या प्रशंसा भी कहते हैं। क्योंकि ऐसा करने से ही जनसाधारण इस तरफ झुकेंगे।

यही आशय मन में रखके—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

अर्जुन ने पूछा (कि) इस तरह निरन्तर भगवान में लगे हुए जो लोग तुम्हारी—भगवान की—साकार-उपासना करते हैं और जो अविनाशी, निराकार या अक्षरब्रह्म में लगे रहते हैं, इन उपाय जानने और करने वालों में सबसे चतुर कौन हैं ? ।१।

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

श्रीभगवान ने उत्तर दिया (कि) मुझ (साकार भगवान) में मन को जुटा के निरन्तर उसीमें पूर्ण श्रद्धा के साथ लगे हुए जो लोग उपासना करते हैं, मेरे जानते वही अत्यन्त कुशल जानकार हैं ।२।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः ॥४॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

विपरीत इनके जो सर्वत्र समदर्शी लोग सभी इन्द्रियों को काबू में करके अक्षर, न बताये जा सकने वाले, अदृश्य, सर्वव्यापी, चिन्तन के

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अयोग्य, निर्विकार एकरस, क्रियाशून्य और स्थिर (ब्रह्म) की पूर्ण उपासना या समाधि करते हैं, समस्त संसार के हित में लगे हुए वे लोग (भी) मुझ भगवान को ही प्राप्त करते हैं (सही)। (मगर) निराकार में जिनके चित्त चिपक चुके हैं ऐसे लोगों को (पहले) दिक्कतें बहुत ज्यादा (होती हैं)। क्योंकि शरीरधारियों के लिये अव्यक्त में जा लगना असंभव सा ही होता है ।३।४।५।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

हे पार्थ, (इनके विपरीत) जो लोग सभी कर्मों को मुझमें अर्पण करके मुझ (साकार भगवान) को ही सबसे बढ़के मानते हुए तथा अनन्य भाव से मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं, मुझी में अपने चित्त को चिपका देने वाले ऐसे लोगों का (इस जन्म) मरण रूपी संसार-सागर से जल्द ही उद्धार कर देता हूँ ।६।७।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

(इसलिये) मुझी में मन जोड़ दे (और) बुद्धि को भी मुझी में लगा दे। (परिणाम यह होगा कि) इसके—मरने के—बाद या इतना कर लेने पर बेशक तुम मुझमें ही निवास करेगा—मेरा ही स्वरूप हो जायगा ।८।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥९॥

लेकिन यदि, हे धनन्जय, मुझमें चित्त को निश्चय रूप से लगा नहीं सकता, तो (इस बात के) अभ्यास रूपी उपाय से ही मुझे (क्रमशः) प्राप्त करने का संकल्प कर ले ।९।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

(और अगर) अभ्यास भी न कर सके तो मदर्थ कर्म करने में ही लग जा । (क्योंकि) मदर्थ कर्मों को करते हुए भी (धीरे-धीरे) इष्टसिद्धि प्राप्त कर ही लेगा ।१०।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्त्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

लेकिन यदि मुझे ही अर्पण करते हुए यह करने में भी असमर्थ हो तो मन पर अंकुश रखके सभी कर्मों के फलों की पर्वा छोड़ दे ।११।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

क्योंकि अभ्यास से अच्छा—काम का—तो ज्ञान है, ज्ञान से भी अच्छा ध्यान है (और) ध्यान से भी अच्छा—कारगर—है कर्मों के फलों का त्याग । (क्योंकि इस) त्याग से फौरन शांति मिलती है ।१२।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा, दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

हमारा जो योगी भक्त किसी पदार्थ से द्वेष न करे, सबके साथ मैत्री और करुणा का भाव रखे, ममता और अहन्ता—माया-ममता—से रहित हो, सुख और दुःख में एक रस रहे, क्षमाशील हो, बराबर संतुष्ट रहे, मन को काबू में रखे, दृढ़ निश्चय वाला हो और मन एवं बुद्धि को हम में ही जिसने अर्पित कर—बाँध—दिया हो वही हमारा प्रिय है ।१३।१४।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

जिससे न तो लोग (किसी भी तरह) उद्विग्न हों, जो लोगों से भी उद्विग्न न हो सके और जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग—घबराहट या परीशानी—(इन सबों) से रहित हो वही मेरा प्रिय है ।१५।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

जो मेरा भक्त बेफिक्र या बेपर्वाह, पवित्र, चतुर (और) पक्षपात रहित (हो), जिसमें भय या परिशानी न हो (और) जो सभी प्रकार के संकल्पों से सर्वथा रहित हो वही मेरा प्रिय है ।१६।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

जिस भक्त को न तो किसी चीज से खुशी हो और न रंजिश, जिसे न तो कोई चिन्ता हो न आकांक्षा और जो बुरे-भले सभी से नाता तोड़ चुका हो वही मेरा प्रिय है ।१७।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥१८॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

जो शत्रु और मित्र में सम है—जिसके शत्रु मित्र हई नहीं मान-अपमान में भी जो सम है—विचलित नहीं होता, शीत-उष्ण, सुख-दुःखादि में भी जो एक ही तरह रहे, जिसे कहीं भी आसक्ति न हो, निन्दा और स्तुति जिसके लिये एक सी हों, जिसकी जबान काबू में हो, (आवश्यकता होने पर काम चलाऊ) जोई मिल जाय उसी से जो संतुष्ट हो जाये, जिसका कोई घरबार न हो और जो अचल बुद्धि वाला हो, वही मनुष्य मेरा प्रिय है ।१८।१९।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः । २०॥

जो भक्त जन मेरी ऊपर बताई इन धर्म युक्त (एवं) अमृत तुल्य बातों के अनुसार श्रद्धापूर्वक चलते और मेरे सिवाय अन्य किसी की पर्वा न करते वह मेरे अत्यन्त प्रिय हैं ।२०।

इति श्री० भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥



ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तेरहवाँ अध्याय

यह बात बारहवें अध्याय के शुरू में ही कह चुके हैं कि वह समूचा अध्याय ग्यारहवें के बाद प्रसंगवश आ गया है। इसीलिये उसे पूरा करने के बाद पुनरपि मुख्य विषय ज्ञान विज्ञान एवं उसके पदार्थों पर आ जाना जरूरी है—उन्हीं पदार्थों पर जिनका सविस्तर निरूपण दसवें तथा प्रदर्शन ग्यारहवें अध्याय में हुआ है। वहाँ आत्मा से ही शुरू करके प्राण, चेतना, मन आदि सभी पदार्थों के साथ ही नदी, पहाड़ आदि मुख्य-मुख्य पदार्थों का वर्णन आया है। उन्हीं में से कुछ प्रमुख पदार्थों के साथ ही कितनी ही रहस्यमय वस्तुओं को ग्यारहवें में दिखाया भी गया है इस तरह दसवें और ग्यारहवें का पूरा मेल है। बल्कि यों कह सकते हैं कि दोनों मिलके वस्तुतः एक ही अध्याय हैं। इसीसे विभूति और योग दोनों का ही उल्लेख दसवें में एक ही साथ किया भी है। इसे दो भागों में बाँटा तो गया है सिर्फ आसानी के लिये। जिससे दसवें में मौखिक विवरण और ग्यारहवें में उसी का प्रत्यक्ष प्रयोग होने से समझने में आसानी हो। यही वजह है कि तेरहवें अध्याय का श्रीगणेश दरअसल विभूतियों से ही शुरू होता है। यही उचित भी है। ग्यारहवें में जब उन्हीं विभूतियों का प्रदर्शन है तब तो मौखिक विचार या विवेचन-विश्लेषण के लिये विभूतियों को ही लिया जाना चाहिये। यह तो पहले ही कई बार कह चुके हैं कि मनन का काम चालू रहना ही चाहिये। यही कारण है कि ग्यारहवें के प्रयोग के बाद भी शेष अध्याय में वह चालू है। तेरहवें में भी वही शुरू होके आगे बढ़ता है।

यहीं यह भी जान लेने की चीज है कि तेरहवें तथा चौदहवें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अध्याय में भी इस सृष्टि का ही विश्लेषण-विवेचन है। सोलहवें एवं सत्रहवें में इस विवेचन-विश्लेषण से होनेवाले ज्ञान के सम्बन्ध की ही कुछ बातों का प्रकारान्तर से निरूपण है। ज्ञान की असली बुनियाद क्या है, उसके लिये कौन सी चीज जरूरी है, उसमें क्या क्या बाधायें कैसे आती हैं, यही बातें सोलह तथा सत्रह अध्याय में मुख्यतः आई हैं। रह गया बीच का पन्द्रहवाँ अध्याय। सो इसमें दोनों का मिश्रण है। कुछ दूर तक शुरू में मुख्यतः सृष्टि की बात है और अन्त में प्रधानतया ज्ञान की ही बात आई है। इस प्रकार पाँच अध्यायों का बँटवारा प्रायः दो समान भागों में करके ज्ञान विज्ञान का निरूपण एक प्रकार से से पूरा कर दिया गया है। अठारहवें में समस्त गीता का उपसंहार है। इसीलिये स्वभावतः ज्ञान विज्ञान की भी बातें आई ही हैं, जैसा कि त्रिगुणात्मक पदार्थों के निरूपण से स्पष्ट है।

हाँ, विभूति संबंधी पदार्थों को देखने और जानने के बाद जो पहला सवाल किसी भी समझदार के मन में हो सकता है वह यही कि आखिर इन सभी भौतिक या प्राकृतिक पदार्थों का निर्लेप आत्मा से ताल्लुक क्या है और क्यों है? यदि कुछेक का सम्बन्ध रहे भी, तो भी सभी महाभूतों और पर्वतादि भीषण पदार्थों से क्या ताल्लुक? अगर यह भी मान लें कि क्लिष्ट से क्लिष्ट और भीषण से भीषण हिम-प्रदेशों तक में भी जीवों की सृष्टि तो मिलती ही है, उस जीव से सूना तो कोई पदार्थ हई नहीं, तो सवाल होता है कि काजी को शहर की फिक्र से दुबले होने तथा मरने की क्या जरूरत? अर्जुन चला था अपनी शंकायें मिटाने। उसे थी अपनी आत्मा के कल्याण की चिन्ता। फिर सारे संसार के इस पंवारे की क्या जरूरत? और अगर यही मान लें कि आत्मा तो एक ही है और उसी के ये अनन्त रूप हैं; इसीलिये सभी की फिक्र करनी ही पड़ती है, तो प्रश्न होता

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है कि ये अनन्त रूप हुए क्यों और कैसे ? यह आत्मा इस भारी बला में आ फँसी क्योंकर ? इन वाहियात पदार्थों से इसका मेल भी क्या है कि इनमें आ फँसी ? यदि ये पूर्व जानेवाले हैं तो वह पच्छिम। फिर यह क्या हो गया कि दोनों की जुटान आ जुटी और सारी विडम्बना खड़ी हो गई ? इस तरह के प्रश्नों का उठना निहायत अनिवार्य है। कृष्ण इसे बखूबी समझते थे। यही कारण है कि बिना पूछे ही इनका उत्तर देना तेरहवें अध्याय के पहले श्लोक से ही शुरू कर दिया।

सचमुच गीता का यह अध्याय बहुत ही सुन्दर है। इसकी व्यावहारिक उपयोगिता होने के साथ ही निरूपण की शैली कितनी सरस और चित्ताकर्षक है ! देखिये तो सही, आखिर खेतों का और खेतिहर किसान का भो क्या ताल्लुक होता है। किसान जब चाहे छोड़ के भाग जा सकता है। उसीने तो खेतों को अपनाया है और उनके हानि-लाभ की जवाबदेही माथे पर अपने मन से ही ली है। परिणाम यह होता है कि वह खेतों के साथ बँध जाता है, उसका उनके साथ अपनापन हो जाता है, उन्हें वह अपना—निजी—मान बैठता है। हालाँ कि जमींदार और सरकार पद-पद पर उसे उनसे बेदखल करने को तैयार रहती हैं। बेदखल कर भी देती है। फिर भी उसका अपनापन पिंड नहीं छोड़ता और वह छाती पीट के मरता है। बेदखली के पहले भी न सिर्फ उनकी उपज के ही लिये जवावदेह होता है; किन्तु उनसे होने वाले हानि-लाभ का भी उत्तरदायित्व उसी पर होता है। वह उसी के पीछे मरता रहता है। इतना ही नहीं। यों तो उसने अपने मन से उन्हें हथियाया था। मगर अगर यों ही उन्हें छोड़ भागना चाहे तो जानें कितनी ही कानूनी-गैरकानूनी अड़चने खड़ी हो जाती हैं, जिनके करते छोड़ के भाग भी नहीं सकता। इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बुरी गति के लिये बेशक उसकी नादानी, बेअक्ली और पस्तहिम्मती ही जवाबदेह हैं। यह बात हमारी नजरों के सामने रोज ही गुजरती है।

बस, ठीक यही हालत आत्मा की है। वह खेतिहर है, खेती करनेवाला है, खेतों की सारी बातें जानता है कि खेत कैसे हैं, किनमें क्या पैदा होता है, हो सकता है, वगैरह वगैरह। वह क्षेत्रज्ञ है, क्षेत्री है। और ये इन्द्रियादि भौतिक पदार्थ? यही तो खेत हैं, क्षेत्र हैं। यही तो लम्बे चौड़े चारों ओर फैले हैं और जानें हजारों तरह की बुरी-भली फसलें पैदा करते रहते हैं। इन्हीं के मालिक आत्माराम हैं। वह इन्हीं को लेके परीशान हैं, पामाल हो रहे हैं, जल-मर रहे हैं। इन खेतों के भी दो विभाग हैं, व्यष्टि और समष्टि। व्यष्टि या टुकड़े-टुकड़े के भीतर सभी के जुदे-जुदे शरीर वगैरह आ जाते हैं। समष्टि जो एक जगह मिली-मिलाई चीज है, के भीतर, प्रधान या मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार आदि आ जाते हैं। यह बात हम पहले ही बखूबी बता चुके हैं। वहीं कह चुके हैं कि महत्, महत्तत्त्व या महान् नाम समष्टि बुद्धि का ही है। इसी बात को इस तेरहवें के शुरू में ही अच्छी तरह लिख दिया है। आत्मा के शरीर के ही भीतर इस स्थूल शरीर और प्रकृति को लिखा है। उसके बाद इससे सम्बन्ध रखनेवाली सभी चीजों का ब्योरा भी दिया है। इस तरह समूचे संसार को शरीर और शरीर वाले या शरीरी—देही—के रूप में दो हिस्सों में बाँट दिया है और कह दिया है कि यह सब ब्रह्म, आत्मा या परमात्मा का ही—मेरा ही—पसारा है। जब शरीर की सारी बातों की जवाबदेही शरीरी पर ही है यह रोज ही देखते हैं; इसीलिये शरीर के सुख-दुःखों को भी उसे ही भोगना पड़ता है, तो फिर समूचे

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

संसार की बला भी उसीके माथे क्यों न आये ? जैसे रस्सी का काम है किसी पदार्थ को कहीं बाँध देना, फाँस देना; रस्सी को गुण या गोन भी कहते हैं; ठीक उसी तरह तीनों गुणों ने इस खेतिहर आत्माराम को शरीर में बाँध और फाँस दिया है। यही बात "कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु" (१३।२१) में कही गई है। जिस तरह वेश्या किसी भोले-भाले को फँसा के उसे खराब कर डालती है, वैसे ही प्रकृति अपनी अनेक वेषभूषा बना के आत्मा को फँसा लेती और तबाह कर डालती है। यही बात "पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्" (१३।२१) में कही गई है।

प्रश्न होता है कि क्षेत्रज्ञ इन क्षेत्रों में खुद ही बँध तो गया है। अब इनसे पिंड छूटने में दिक्कत भी है। वेश्या ने इस भोले-भाले को अनजान में फँसा लिया है सही। काफी बर्बाद भी कर डाला है। मगर क्या इस आफत से छूटने का कोई उपाय नहीं है ? और अगर है तो कौन सा ?

उत्तर है कि उपाय जरूर है। जब हम सारी बातें ठिकाने से समझ जायें, अपनी हालत बखूबी जान जायें, हमारा क्या अधिकार है, हम क्या कर सकते हैं, फँसने की वजह क्या है, आदि चीजें जान लें, तो हिम्मत कर इन्हें उठा फेंकेंगे। दूसरा रास्ता है नहीं। इसके लिये खेतों का पूरा ब्योरा और शुरू से उनका इतिहास भी जान लेना जरूरी है कि ये कब कैसे तैयार हुए और हम इनमें कैसे-कैसे फँसे। क्योंकि इसी जानकारी से हमें काफी वजहें मिल जायँगी, जिनके बलपर बाजीदावा देके हट जायँ। और माकूल वजह होने पर इसमें अड़चन भी क्यों होगी ? यही बात शुरू के "महाभूतान्यहंकार" प्रभृति श्लोकों में है। इनमें खेतों का कच्चा चिट्ठा है। "अमानित्व-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मदंभित्व" आदि में जानकारी के उपाय बताये गये हैं जिससे हम पूरे आगाह हो जायँ और हिम्मत ला सकें। वेश्या का कच्चा चिट्ठा जान लेने पर ही, उसके सभी गूणों—सभी कारनामों—को बखूबी समझ लेनेपर ही, उसके जाल से छूट सकते हैं। इसीलिये प्रकृति का ब्योरा दिया गया है; ताकि जानकर सजग हो सकें। इन्हीं सब बातों को दिमाग में रखके—

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१॥

श्रीभगवान कहने लगे (कि) हे कौंतेय, इस शरीर को (ही) क्षेत्र—खेत—कहा जाता है (और) जो इसे बखूबी जानता है उस (आत्मा) को ही उसके जानकार लोग क्षेत्रज्ञ या खेतिहर कहते हैं।१।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

हे भारत, सभी क्षेत्रों में (रहनेवाला) क्षेत्रज्ञ भी मुझी को जानो। (इस तरह) क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है वही ज्ञान मैं ठीक मानता हूँ।२।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥३॥

वह क्षेत्र जो कुछ है, जितने प्रकार का है और उसके जितने विकार या कार्य हैं, (साथ ही) वह (क्षेत्रज्ञ) भी जो कुछ है और उसका जो प्रभाव है, सभी कुछ संक्षेप में मुझसे सुन लो।३।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

ऋषियों ने (यही बात) बहुत ढंग से वर्णन की है, वेद के अनेक मंत्रों ने जुदा-जुदा (कही है) और ब्रह्मप्रतिपादक उपनिषद वाक्यों ने भी तर्कयुक्ति के साथ निश्चित रूप से बताई है ।४।

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः ॥५॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥

पाँच महाभूत, जिन्हें पंचतन्मात्रा या सूक्ष्म भूत कहते हैं, अहंकार, समष्टिबुद्धि या महत्तत्व, प्रकृति, ग्यारह इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के पाँच विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, शरीर, जो इन्द्रियों के सम्बन्ध से सुख दुःख का अनुभव करता है, चेतनता या बुद्धि और धैर्य—संक्षेप में यही क्षेत्र और उसके विकार—कार्य—कहे गये हैं ।५।६।

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

अभिमान-शून्यता, दंभ या दिखावटी काम की शून्यता, अहिंसा, क्षमा, नम्रता, आचार्य या उपदेशक की सेवा-शुश्रूषा, पवित्रता, स्थिरता, मन पर काबू, इन्द्रियों के विषयों से बैराग्य, अहंकार का त्याग, जन्म-मृत्यु-बुढ़ापा-रोग इन चारों के दुःखों और बुराइयों का निरन्तर खयाल, पुत्र-स्त्री-घरबार आदि में आसक्ति का त्याग तथा इनमें तन्मयता का न होना, बुरी-भली बातें हो जाने पर भी हमेशा चित्त में उनका असर होने न देना, भगवान या आत्मा में ऐसी अनन्य भक्ति जो कभी डिग न सके, एकान्त स्थान का सेवन, लोगों के भीड़-भड़क्के में रुचि का न होना, अध्यात्मशास्त्र में निरन्तर लगे रहना और तत्त्वज्ञान या आत्मसाक्षात्कार के प्रयोजन पर नजर रखे रहना, यही ज्ञान के साधन हैं। इनके विरूद्ध अभिमान, दंभ आदि अज्ञान को पैदा करते और बढ़ाते हैं ७।८।९।१०।११।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥१५॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१६॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥१७॥

जो जानने योग्य—क्षेत्रज्ञ—है और जिसके ज्ञान से मोक्ष मिलता है वही वस्तु अभी-अभी कहे देता हूँ। (वह वस्तु) आदि शून्य पर-ब्रह्म ही है। वह न तो स्थूल और कार्य कहा जाता है और न सूक्ष्म और कारण ही। उसके हाथ, पाँव, आँख, सर और मुँह सभी जगह हैं—अर्थात् वह सर्वत्र मौजूद है। उसके कान (भी) सर्वत्र हैं। वह सभी पदार्थों को घेरे पड़ा है। सभी इन्द्रियों के कामों में वह लिपटा सा रहता है (जरूर)। (मगर वस्तुतः) सभी इन्द्रियों से रहित है। कहीं भी चिपका नहीं है। (फिर भी) सबों को कायम रखता है। निर्गुण है। (साथ ही) गुणों (के कामों और फलों) को भोगता (भी) है। सभी पदार्थों के बाहर भी है और भीतर भी। (स्वयमेव) चर, अचर (पदार्थ रूपी भी) है। सूक्ष्म होने से ही वखूबी जाना नहीं जा सकता। दूर भी है (और नजदीक भी। पदार्थों में बँटा न होके सब में एकरस है। (मगर) अलग-अलग जैसा लगता है। पदार्थों का भरण-पोषण करनेवाला उसीको जानना चाहिये। वही सबको ग्रस लेनेवाला और बनाने वाला भी है। वह ज्योतियों को भी ज्योति देने वाला (तथा) अँधेरे से परे माना जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है। (वही) पूर्वोक्त ज्ञान है और ज्ञेय भी। ज्ञान के द्वारा प्राप्त करने योग्य भी वही है। वहीं सबों के हृदयों में मौजूद है ।१२।१३। ।१४।१५।१६।१७।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

संक्षेप में क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेय यही कहे गये हैं। मेरा भक्त इसे ठीक-ठीक जान के मेरा ही रूप हो जाता है ।१८।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥१९॥

प्रकृति और पुरुष या क्षेत्र एवं आत्मा इन दोनों को ही अनादि समझो। (इनमें भी) (सभी पूर्वोक्त) विकारों और गुणों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न जानो ।१९।

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२०॥

कार्य और करण को बनाने में कारण प्रकृति ही है। पुरुष (तो सिर्फ) सुख-दुःखों के भोगने में ही कारण है ।२०।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

क्योंकि पुरुष ही प्रकृति के सम्बन्ध से ही उससे उत्पन्न त्रिगुण पदार्थों को भोगता है। (इस तरह जो) इन गुणों में उसकी आसक्ति है वही उसके भले-बुरे जन्मों का कारण है ।२१।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः ।२२।।

(असल बात यह है कि) इस देह में (यह जो) परमपुरुष है वह तो अलग होके सभी बातों को सिर्फ देखता (और इसी रूपमें) अनुमोदन करता है, कायम रखता है और (अन्त में उन्हें) भोगता भी है। (वही) महेश्वर और परमात्मा भी कहा गया है।२२।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ।।२३।।

(इसीलिये) जो पुरुष को और प्रकृति को भी गुणों के साथ इस तरह ठीक-ठीक जान जाता है वह चाहे किसी भी दशा में रहे, (फिर भी) पुनर्जन्म नहीं पाता। ।२३।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ।।२४।।
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।।२५।।

कुछ लोग ध्यान से ही अपने ही भीतर अपने आप आत्मा को (इस प्रकार) देखते हैं—साक्षात् करते हैं। दूसरे लोग सांख्ययोग से ही (ऐसा करते हैं) तथा तीसरे (दल वाले) कर्मयोग से ही। लेकिन इस प्रकार नहीं जान सकने वाले कुछ लोग तो दूसरों से सुनके ही उपासना करते हैं। सुनने के अनुसार ही पूरा अमल करने वाले वे भी जन्ममरण से छुट्टी पाई जाते हैं।२४।२५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

हे भरतवंश में श्रेष्ठ, जो कुछ भी स्थावर और जंगम पदार्थ हैं या बनते हैं वह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के सम्बन्ध से ही होते हैं यह जान रखो ।२६।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

(इसीलिये) सभी पदार्थों में एकरस रहने वाले तथा उनके नष्ट होने पर भी नष्ट न होने वाले परमेश्वर (रूपी आत्मा) को जो देखता है—साक्षात् करता है—(दरअसल) वही देखता है—यथार्थ-दृष्टि वाला है ।२७।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८॥

क्योंकि सर्वत्र एकरस रहने वाले ईश्वर को ही जो देखता रहता है वह स्वयं आत्मा को नष्ट नहीं करता—उसका असली रूप जान जाता है। इसीलिये वह परमगति—मुक्ति—पा जाता है ।२८।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥२९॥

(इसीलिये) जो यह देखता है कि सभी कर्म तो प्रकृति के द्वारा ही किये जाते हैं; आत्मा को (इसी से) जो अकर्त्ता—कुछ भी न करने वाला—देखता है, वही (तो) देखने वाला है—जानकार है ।२९।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनु॰ पश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

जब (मनुष्य) जुदे-जुदे दीखने वाले पदार्थों को एक ही रूप—आत्मरूप—में देखता है और उसी से इनका पसारा देखता है तभी ब्रह्मरूप हो जाता है ।३०।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

हे कौन्तेय, अनादि एवं निर्गुण होने के कारण ही यह विकार-शून्य परमात्मा (रूपी पुरुष या जीव) शरीर में रहने पर भी न तो कुछ करता है और न किसी में सटता है ।३१।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥
यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

जिस तरह सर्वत्र रहने पर भी अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण ही आकाश किसी से भी नहीं चिपकता, उसी तरह सभी शरीर में रहने वाली आत्मा भी किसी से लिप्त नहीं होती । जिस तरह एक ही सूर्य सारे संसार को प्रकाशित करता है, उसी तरह (एक ही) क्षेत्रपति—खेतिहर या क्षेत्रज्ञ—सभी क्षेत्रों को प्रकाशित करता है ।३२।३३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥३४॥

इस तरह क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ में क्या विलक्षणताएँ हैं, फर्क हैं यह बात और जड़ प्रकृति का अन्त या नाश भी ज्ञानदृष्टि से जो लोग जानते हैं वही परब्रह्म तक पहुँचते हैं ।३४।

इति श्री० क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥



ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

चौदहवाँ अध्याय

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, चौदहवाँ अध्याय भी सृष्टि का विवेचन-विश्लेषण ही करता है। लेकिन यह करता है इस काम को एक प्रकार से स्वतंत्र रूप से। इसकी वजह भी है जिससे यह अध्याय ही स्वतंत्र हो गया है। तेरहवें अध्याय ने बहुत फैली-फैलाई सृष्टि को, जो काबू से बाहर सी प्रतीत होती थी, काबू में कर दिया। क्योंकि खेतिहर या किसान और क्षेत्र या खेत के रूप में सारी बातें रख के इन्हें और इनको ही लेके बनी सृष्टि को भी जैसे छोटी सी बनाके काबू में कर दिया गया है। क्षेत्र से बाहर जब कुछ हुई नहीं और उसके बिना सारी घर-गिरस्ती ही चौपट है, तो काबू और कहते हैं किसे ? इस तरह जो चीज समझ में समा भी नहीं सकती थी वह अब दूसरी ही जान पड़ने लगी। अब उसका रूप इतना छोटा हो गया कि उसके नाम से होनेवाली घबराहट दूर होके उस समूची चीज के समझने-विचारने में सरसता आ गई। इसने ही उसमें चस्का भी पैदा कर दिया।

लेकिन इतने पर भी शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण प्रभृति और विषयों एवं विकारों के रूप में यह सृष्टि विस्तृत की विस्तृत ही है। सबों का खयाल-विचार करते-करते मन में थकान या ऊबसी भी हो जाती है। शरीर, इन्द्रियाँ वगैरह कह देना जितना आसान है इनका विचार उतना आसान नहीं है। विचारिये और देखिये कि लम्बी-चौड़ी दुनिया सामने खड़ी हो जाती है या नहीं। फिर तो उधेड़-बुन करते-करते नाकों दम हो जाती है, घबराहट पैदा हो जाती है। इसलिये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जरूरत थी इस बात की कि और भी संक्षिप्त रूप में इसे रख दिया जाय। साथ ही, वह संक्षिप्त रूप ऐसा हो कि साफ-साफ मालूम पड़े, समझ में आये। सभी पदार्थों कों उसने अपने उदरस्थ कर लिया हो यह भी स्पष्ट नजर आता रहे। यदि ऐसा उपाय निकल आये तो कितना सुन्दर हो, कितनी आसानी हो! भला, सभी विषयों का पूरा-पूरा विवेचन कर सकना और उनके गुणदोष को समझ पाना किसकी ताकत की बात है? यह भी कहना कि सभी चीजें बन्धन में ही डालती हैं या बुरी हैं कितना खोखला लगता है! आखिर संसार के भीतर ही तो उपदेश, विवेक और समाधि प्रभृति भी हैं! तो क्या ये भी बुरे हैं? यदि नहीं, तो समस्त संसार को बुरा क्यों कहा? क्या ये संसार में आ जाते नहीं? ऐसी हजार पेचीदी बातें पड़ी हैं जिनका समाधान तेरहवें अध्याय से नहीं हो पाता। इसलिये भी जरूरत थी कि कोई सरल मार्ग निकलता, कोई निराला आईना आविष्कृत होता, जिसमें सारी चीजें झलक पड़तीं और उनकी बुराइयाँ साफ मालूम हो जातीं। इन्हीं सब खयालों से चौदहवें अध्याय की स्वतंत्र आवश्यकता पड़ी।

इसमें सारी सृष्टि को तीनों गुणों के भीतर 'गागर में सागर' की ही तरह रखके कमाल कर दिया है! फिर भी खूबी यह है कि इनमें सारी दुनिया आईने की तरह चमकती है और यह पता फौरन चल जाता है कि क्यों और कैसे हरेक चीज बन्धन का कारण होने से बुरी है। इतना आसान और सुन्दर रास्ता शायद ही कहीं कभी मिल सकने वाला था। एक बात यह भी है कि तेरहवें में जो यह कह दिया है कि "गुणों के साथ लिपटने और फँसने से ही आत्मा का नीच-ऊँच योनियों में जन्म होता रहता है"—"कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु" (१३.२१), उसका स्पष्टीकरण भी हो जाना जरूरी था कि

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

यह बात कैसे होती है। इस अध्याय में हरेक पदार्थ का विश्लेषण करके बुरे-भले सभी को तीन गुणों का ही रूप बता दिया है। यह बात भी है कि ये तीनों ही गुण बन्धन में डालने वाले हैं। फलतः सभी पदार्थ आसानी से बन्धनकारी सिद्ध हो गये। आखिर गुण तो रस्सी को ही कहते हैं न ? और रस्सी से लिपटना ही तो बन्धन है। इस अध्याय का व्यावहारिक संसार में सबसे ज्यादा महत्त्व इस बात में है कि इसने बता दिया है कि स्वभाव से ही परस्पर विरोधी और एक दूसरे को मिटा डालने वाले पदार्थ भी किस प्रकार आपस में अच्छी तरह मिल के साथ चल सकते, एक दूसरे की मदद कर सकते और सारा काम अंजाम दे सकते हैं। यह अपूर्व उपदेश तो शायद ही कहीं मिला हो या मिलेगा।

यही कारण है कि चौदहवें के शुरू में ही इसे सबसे श्रेष्ठ बताया गया है, सर्वोत्तम कहा गया है। भला, इससे बढ़के ज्ञान का सुन्दर, सर्व-सुलभ और विशद मार्ग होई क्या सकता है ? दूसरी तरह से ज्ञान या जानकारी प्राप्त करने पर तो कभी धोका भी हो सकता है। मगर इसकी जो सबसे बड़ी खूबी है वह यही कि कहीं भी किसी भी पदार्थ में धोके की गुंजाइश रहने पाती नहीं। यह तो सबों का छिपा रूप नंगा कर देता है। यही वजह है कि इस अध्याय में प्रकृति से सीधे ही गुणों का विस्तार और पसारा शुरू कर दिया है। गीता की पौराणिक शैली की सबसे सुन्दर खूबी इस अध्याय में यह पाई जाती है कि शुरू में ही आलंकारिक भाषा में सन्तानोत्पत्ति की जगह सृष्टि की उत्पत्ति की कल्पना करके ब्रह्म के द्वारा प्रकृति में गर्भाधान लिखा गया है और उससे पहले-पहल एक ही साथ तीन बच्चों का जन्म बताया गया है। एक तो यही विलक्षणता है कि एक ही साथ तीन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बच्चे ! इससे खामखा लोगों का ध्यान आकृष्ट हो जाता है कि बात क्या है। फिर वे खोद-विनोद करने लग जाते हैं, मनन में पड़ जाते हैं। दूसरे जब वे बच्चे परस्पर विरोधी और एक दूसरे को खाने पर ही तुले जैसे हों तब तो और भी आश्चर्य-जनक चीज हो जाती है कि ये माता-पिता भी खूब हैं जिनने ऐसे बच्चे जने ! इस तरह ब्रह्म को पिता और प्रकृति को माता के रूप में चित्रित करने का प्रयोजन भी पूरा हो जाता है।

सृष्टि के सम्बन्ध में शुरू-शुरू का जो गोलमोल और सामान्य ज्ञान या खयाल है वही गर्भाधान है। उसी के बाद प्रकृति से गुण-विस्तार के द्वारा सृष्टि फैलती है। यह बात गुणवाद में बखूबी समझाई जा चुकी है। इस अध्याय का आशय समझने के पहले उसे पढ़ लेना आवश्यक है।

चौथे श्लोक तक तो भूमिका के रूपमें यही बात कही गई है। उसके बाद के पाँच (५-९) श्लोकों में गुणों के निजी स्वभाव और काम बता के अनन्तर ९ (१०-१८) श्लोकों में यह बताया गया है कि इन तीनों गुणों की आपसी शर्त्तबन्दी है, जिससे एके बाद दीगरे क्रमशः तीनों मुखिया होते हैं। मगर हर समय एक ही मुखिया और शेष दो उसी के अनुयायी होते हैं। किसकी नायकता की क्या पहचान है यह भी बताया गया है। उसी के साथ किस गुण की प्रगति के समय शरीरान्त होने से मनुष्य की क्या गति होती है यह भी कहा है। अनन्तर दो (१९-२०) श्लोकों में इन गुणों से छुटकारा पाने पर ही मुक्ति होती है यह बता के शेष सात श्लोकों में इनसे छुटकारा पाने का उपाय और छुटकारा पाये हुए की पहचान बताई गई है। छुटकारा पाए हुए को ही गुणातीत कहा है। इन्हीं सात में पहला —२१वाँ—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्लोक अर्जुन के प्रश्न का है। क्योंकि जब ऐसी बात है तो घबरा के या उत्सुकतावश इनसे पिंड छुड़ानेकी बात फौरन ही पूछ लेना उसके लिये अनिवार्य हो गया था। यह विषय ऐसा जरूरी और कामका है कि बिना पूछे ही कृष्ण ने इसका कहना आरंभ कर दिया था। वे खुदबखुद इसकी महत्ता और जरूरत महसूस कर रहे थे। इसका कारण हम बताई चुके हैं। इसोलिये अर्जुन के बिना कुछ कहे ही स्वयमेव—

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥
इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥२॥

श्री भगवान कहने लगे (कि) सभी ज्ञानों में उत्तम ज्ञान, जिसे हासिल करके सभी मुनिगण यहाँ से (देह छोड़ने के बाद) परम कल्याण पा गये, मैं अभी-अभी कहता हूँ, (सुनो)। इस ज्ञान का आश्रय लेने पर मेरा स्वरूप हो जाने वाले न तो सृष्टि (के शुरू होने) पर जन्म लेते और न प्रलय में व्यथित होने या मरते हैं।१।२।

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्त्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥

हे भारत, महत्तत्त्व गर्भित प्रकृति ही मेरी स्त्री है और मैं उसी में गर्भाधान करता हूँ। उसी से सभी पदार्थों की उत्पत्ति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हे कौन्तेय, सभी (पशु आदि) योनियों में जितनी तरह की आकृतियाँ हैं उन सबों की माता (वही) प्रकृति और गर्भाधान करने वाला पिता मैं हूँ ।३।४।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।।५।।

हे महाबाहु, सत्त्व, रज, तम यही (तीन) गुण प्रकृति से पैदा होते हैं (और) विकार रहित आत्मा को देह में फाँसते हैं ।५।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखासंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ।।६।

हे निष्पाप, उसमें भी निर्मल होने के कारण प्रकाशक और निर्दोषी सत्त्वगुण सुख और ज्ञान में आसक्ति पैदा करके आत्मा को फँसाता है ।६।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ।।७।।

हे कौन्तेय, रजोगुण, तृष्णा एवं आसक्ति को पैदा करने वाला (और) रागरूपी ही है, ऐसा समझो। वह कर्म में आसक्ति पैदा करके जीवात्मा को फँसाता है ।७।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ।।८।।

हे भारत, तमोगुण तो अज्ञान को पैदा करने और सभी जीवात्माओं को मोह में फँसानेवाला है। वह असावधानी, आलस्य और निद्रा ही फँसाता है ।८।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥९॥

हे भारत, सत्त्व सुख में लिपटा देता है और रज कर्म में । (परन्तु) तम तो ज्ञान को छेंक के असावधानी में ही लिपटाता है ।९।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥१०॥

हे भारत, रज और तम को दबा के—अपने अधीन करके—ही सत्त्व आगे आता है । (इसी तरह) सत्त्व एवं तम को दबा के रज और सत्त्व तथा रज को दबाके तम—(आगे आता—बढ़ता है) ।१०।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥११॥

जब इस शरीर के सभी द्वारों—इन्द्रियों-छिद्रों—से अँधेरा हट के ज्ञान पैदा होता है तभी सत्त्व की वृद्धि जानें ।११।

लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥

हे भरतश्रेष्ठ, रज के बढ़ने पर लोभ, काम में झुकाव, क्रियाओं का आरम्भ, उनका लगातार जारी रहना और हायहाय ये बातें होती है ।१२।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१३॥

हे कुरुनन्दन, तम की वृद्धि होने पर (दिमाग के सामने) अँधेरा, कामों में झुकाव न होना, असावधानी और मोह या उलटी समझ, यही बातें होती हैं ।१३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥१४॥

जब देहधारी सत्त्व की वृद्धि के समय मरता है तो उत्तम बातें जानने वालों के निर्मल लोक या समाज में ही जनमता है ।१४।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

(इसी तरह) रज की वृद्धि में मरनें पर कर्म में लिपटे लोगों में तथा तम की वृद्धि में मरने पर विवेकशून्य योनियों में जनमता है ।१५।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥

सात्त्विक कर्मों का सुन्दर, निर्मल, सात्त्विक फल बताते हैं, राजसी कर्मों का दुःख और तामसी कर्मों का अज्ञान—अज्ञान की वृद्धि—फल (कहते हैं) ।१६।

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

सत्त्व से ज्ञान की एवं रज से लोभ की ही वृद्धि होती है और तम से प्रमाद, मोह और अज्ञान (फैलते हैं) ।१७।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१८॥

सत्त्वगुण (की विशेषता) वाले ऊपर जाते या प्रगति करते हैं, रजोगुण वाले बीच में ही रह जाते—न प्रगति करते और न अधोगति, (और) निचले तमोगुणवाले अवनतिशील होते हैं ।१८।

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१९॥

जानकार—पूर्णआत्मज्ञानी—ज्योंही गुणों के सिवाय दूसरे को कर्मों का करने वाला नहीं मानता है और गुणों से निराली (आत्मा) को जान लेता है, (त्यों ही) वह मेरा स्वरूप—मुक्त—हो जाता है ।१९।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

देह (धारण) के कारण इन तीन गुणों से पार जाने पर ही मनुष्य जन्म, मरण (और) बुढ़ापे के दुःखों से छुटकारा पाके मुक्ति हासिल करता है ।२०।

अर्जुन उवाच

कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्त्तते ॥२१॥

अर्जुन ने पूछा (कि) हे प्रभो, इन तीन गुणों से पार पाये (मनुष्य) के चिह्न क्या है ? उसके आचरण कैसे होते हैं ? और इन तीन गुणों से पार पाते हैं कैसे ? ।२१।

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृतिं च मोहमेव च पांडव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥२२॥

श्रीभगवान ने कहा—हे पांडव, (तीनों गुणों के क्रमशः कार्य) प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह के होने पर न तो (उनसे) द्वेष रखता है और न यही चाहता है कि वे हट जायें ।२२।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्त्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ॥२३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥२४॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

(अतएव) जो उदासीन की तरह रहता है, जिसे गुण हिला-डुला नहीं सकते 'ये तो गुण ही अपना काम कर रहे हैं, (मुझे इससे क्या ?)' इस प्रकार (खयाल किये) जो निश्चिन्त पड़ा रहता है (और) जरा भी हिलता-डोलता नहीं, जिसके लिये दुःख-सुख समान हैं, जो कभी बेचैन नहीं होता, जिसकी नजरों में मिट्टी का ढेला, पत्थर एवं सोना बराबर ही हैं, जिसके लिये प्रिय-अप्रिय एक से हैं, जो हिम्मत-वाला है, जिसके लिये अपनी निन्दा या स्तुति एक सी ही है, जो मान-अपमान में ज्यों का त्यों रहता है, जिसके लिये शत्रु या मित्र के पक्ष हई नहीं (और) जो सभी संकल्पों से बिल्कुल ही बरी है, वही गुणातीत कहा जाता है ।२३।२४।२५।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

जो कभी भी न डिगनेवाली भक्ति के ही रास्ते मेरा सेवन करता है वही इन गुणों से बखूबी पार पाके ब्रह्मरूप हो जाता है ।२६।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥२७॥

क्योंकि अहम्—आत्मा—ही अविनाशी, निर्विकार, नित्य धर्म-स्वरूप और बराबर बने रहनेवाले सुख रूपी ब्रह्म का आधार है ।२७।

इति श्री० गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पन्द्रहवाँ अध्याय

यह तो हमने पहले ही कहा है कि पन्द्रहवाँ अध्याय मिलाजुला है। इसमें कुछ तो संसार का ही, इस सृष्टि का ही विवेचन-विश्लेषण है। कुछ ज्ञान की बातें भी हैं। आत्मा की जानकारी के लिये यत्नों की चर्चा तथा दूसरे उपाय प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में कहे गये हैं। इसलिये पिछले और अगले अध्यायों की सन्धि के रूप में इसका यहाँ आ जाना उचित ही है। सममुच यदि देखा जाय तो शुरू के दस श्लोकों में किसी न किसी रूप में सृष्टि के निरूपण की प्रधानता है। फिर "यतन्तो योगिनः" आदि ग्यारहवें श्लोक से ज्ञान के साधनों की ही बात प्रधानतया पाई जाती हैं। "द्वाविमौ" आदि अन्त के पाँच श्लोकों में तो यह बात आई ही है। यदि उनसे पहले के श्लोकों में विराट् की कुछ बातें आ गई हैं, तो एक तो वे चिन्तन और यत्न के साधन के रूप में ही आई है। दूसरे, यही तो आखिरी बार उनका उल्लेख है। या यों कहिये कि प्रकारान्तर से उनके उपसंहार द्वारा उनसे बिदाई है।

चौदहवें अध्याय के अन्त में जो आत्मा को सबका आधार या प्रतिष्ठा कह दिया है उससे आनन्दबल्लीवाली बात सामने आ जाती है, जिसमें इस भौतिक सृष्टि के शरीर आदि के निर्माण का उल्लेख है। उसी के साथ-साथ यह सृष्टि भी दिमाग में खामखा आ जाती है। उसी का जिक्र पन्द्रहवें के शुरू में ही है। एक बात और भी है। यदि गुणों से या त्रिगुणात्मक संसार से पार जाना है, पार पाना है, तो क्या किया जाय यह जो प्रश्न उठा था, उसका उत्तर यही दिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

गया है कि आत्मा में ही लग ज़ाओ। वही ब्रह्म का भी आधार है,नींव है, प्रतिष्ठा हैं, इससे साफ हो जाता है कि शरीर के भीतर ही उसे ढूँढना होगा। एतदर्थ क्रमशः भीतर या नीचे जाना होगा। क्योंकि एके बाद दीगरे बहुत से पर्दे उस पर पड़े हैं। मगर इसमें कुछ खतरे भी हैं। हमारा खयाल इससे संकुचित हो जा सकता है और हम बाहरी दुनिया को पर्वा, उसके सुख-दुःख की फिक्र छोड़ दे सकते हैं, जो बात गीता को आम तौर से पसन्द नहीं है। इसी के साथ यह भी हो सकता है कि हम दुनिया से ऊँचे उठें ही न। हम तो अपनी आत्मा के अन्वेषण में नीचे ही जायेंगे न ? भीतर ही घुसेंगे न ? गुफा में ढूँढ़ना जो है। मगर दुनिया का मजा लेने और जीवन को आनन्दमय बनाने के लिये इस बात की जरूरत है कि हम उससे ऊँचे उठें, ऊपर जायें। समूचे संसार को फाँद के जब ऊपर जा पहुंचें तभी मस्ती आ सकती है। डर था, शायद यह बात न हो सके। इसीलिये चौदहवें के अन्त में आत्मा के उल्लेख के साथ ब्रह्म का भी उल्लेख किया गया है। उसका सीधा मतलब यही है कि हम ढूँढते-ढूँढ़ते नीचे भी जायें और ऊपर भी। आत्मा की तलाश में नीचे और ब्रह्म की खोज में ऊपर बढ़ें। नतीजा यह होगा कि सबसे नीचे और सबसे ऊपर जाना ही होगा। इस तरह अन्तिम छोरों के मिल जाने (Extremes meet) के अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक हो जायँगे और हमारा काम हर तरह से पूरा हो जायगा। बिना सबके नीचे और ऊपर गये तो इन दोनों का ठीक-ठीक पता लग नहीं सकता है। "अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्" के द्वारा वैदिक ऋषियों ने तो ऐसा ही बताया है। और ऐसा होने पर दोनों का अन्तिम मिलन अनिवार्य है। इसी बात का स्पष्टीकरण पन्द्रहवाँ अध्याय करता है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कुछ और भी बातें हैं। "वासुदेवः सर्वमिति" (७।१९) में समस्त संसार को वासुदेव कहके इसी रूप में इसे देखने वाले ही पक्के और पहुँचे महात्मा बताये गये हैं। ज्ञान का आखिरी रूप यही कहा गया है। इधर हमारे यहाँ पुरानी से भी पुरानी परिपाटी है कि पीपल के वृक्ष को वासुदेव कहते और मानते हुए इसकी जड़ को सींचते रहते हैं। यह एक धार्मिक प्रथा है। पीपल को ही अश्वत्थ भी कहते हैं। उधर उपनिषदों में इस संसार को ही अश्वत्थ वृक्ष के रूप में लिखा है। इसकी जड़, पत्ते आदि भी बताये गये हैं। कठोपनिषद् के द्वितीय अध्याय की छठीं बल्ली का पहला ही मंत्र यों है, "ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदैवामृतमश्नुते"। गीता के पन्द्रहवें अध्याय का पहला श्लोक इसके पूर्वार्द्ध से बिल्कुल ही मिलतासा है। उपनिषद ने कहा है कि इस अश्वत्थ की जड़ ऊपर और शाखायें नीचे हैं और यह सनातन है, अनादि है। यह कब बना कोई कह नहीं सकता। मगर जिसे अविनाशी ब्रह्म कहते हैं और मोक्षावस्था में जिसकी प्राप्ति होती है वह इससे जुदा नहीं है। इसके मूल में वही है। गीता ने सनातन की जगह 'अव्यय' कह दिया है। मगर आशय वही है। इस प्रकार वासुदेव या ब्रह्म रूप में इस जगत् को मानने तथा देखने की जो पुरानी प्रणाली है वह गीता के मत के अनुकूल ही है। इसीलिये उसी का श्रीगणेश इस अध्याय में किया है।

हम इस संसार को सचमुच ही मजबूत और सनातन न मान बैठें, इसीलिये अश्वत्थ नाम दिया गया है। अश्वत्थ का तो अर्थ ही है कि जो कल न रहे। यह तो सदा परिवर्त्तनशील है, कमजोर है और आत्मज्ञान से इसका खात्मा पलक मारते हो जाता है। आज ज्ञान हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

और कल ही यह लापता ! यह है भी तो भयानक ही। इसमें तो कष्ट ही कष्ट है। इसीलिये तो योगदर्शन में पतंजलि ने कहा है कि अथ से इति तक यह केवल दुःखमय ही है ऐसा विवेकी मानते हैं। साफ ही देखते हैं कि यहाँ तीनों गुणों की ऐसी आपसी कुश्ती और खींचतान है कि कुछ पूछिये मत, "परिणामतापसंस्कार दुःखैगु णवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः" (२।१५)। नैयायिकों ने भी संसार को दुःखात्मक ही माना है। यहाँ तक कि सुख को भी दुःख ही कहा है। उनके मत से छे इन्द्रियाँ—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन—उनके छे विषय-ज्ञान और छे विषय, शरीर, सुख और दुःख यही इक्कीस दुःख उनने माने हैं। उनके मत से यह संसार दुःखात्मक है और इन्हीं का ध्वंस मुक्ति है। मगर यहाँ तो उलटी ही गंगा बहती नजर आती है। सभी लोग फूले मस्त हैं, राज-पाट बाल-बच्चों और स्वर्ग-वैकुंठ के ही पीछे मस्त हैं। उन्हें तो संसार की दुःखरूपता दीखती ही नहीं। फिर इससे पार जाने का यत्न वे क्यों करने लगे ? प्रश्न है कि ऐसा हुआ क्यों ? बात तो उल्टी है न ? कष्टात्मक ही तो यह संसार है। तब यह ऐसा हुआ कैसे ? इसके ऐबों को किसने छिपाया ?

इसका उत्तर गीता पहले ही श्लोक के उत्तरार्द्ध में देती है कि वैदिक कर्मकांड ने ही तो आँखों में धूल झोंक दी है। दिनरात उसी के पीछे पड़े रहते हैं और फुर्सत मिलती ही नहीं ! जहीं-तहीं वैदिक साहित्य में, वेद मंत्रों में स्त्री-पुत्रादि की प्रशंसा, स्वर्ग की बड़ाई, राज-पाट की महिमा लिखी मिलती है। फलतः जनसाधारण यदि कभी ऊबें भी तो पुनरपि इसी वजह से उसी में पड़े रहते हैं। जैसे वृक्ष के हरे-भरे पत्ते उसे छेंके और घेरे रहते हैं। इसीलिये उसके तने और शाखा-प्रशाखाओं की नग्नता दूर से मालूम नहीं होती। किन्तु

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ज्योंही पत्ते हटे कि समूचा पेड़ नंग-धड़ंग, बेढंगा और भयावना नजर आता है। ठीक वैसे ही वैदिक मंत्रों और तन्मूलक साहित्य ने इस अश्वत्थ के लिये भी पत्ते का काम कर दिया है, जिससे हम इसकी भयावनी सूरत देख नहीं पाते। इस तरह हम देखते हैं कि ज्ञान की ओर बढ़ने में गीता का यह वर्णन कितना आलंकारिक एवं महत्त्वपूर्ण सहायक है, खास कर ऐसा कहके कि जो इसके नग्नरूप को जानता है दरसल वही वेद का ज्ञाता है। वह पर्दे के भीतर घुस जो जाता है।

पीपल में यह भी देखा जाता है कि ऊपर से बरोहें निकलती हैं। ये हैं दरअसल जड़ें ही। पकड़ी, बरगद और पीपल में ही ये ऊपर की डालों से निकल के नीचे लटकती हैं। बरोह के मानी हैं ऊपर से निकलने वाली। बर+आरोह से ही बरारोह बन के बरोह हो गया। बर कहते हैं ऊपर को। यह बात कितनी खूबी के साथ जगत् से मिलती है। ऊपर ठहरा ब्रह्म। वहीं से जगत् की सारी जड़ें निकली तथा फैली हैं। यदि इन जड़ों का पता लगाना है तो ऊपर जायें। तभी इन्हें पायेंगे और काट देंगे। ऊपर जाने या संसार के पदार्थों से अलग होने में अगर हजार ढंग के ताल्लुक बाधक हैं, तो वैराग्य की शरण लें और मन को इनसे हटायें। इनमें आसक्ति का त्याग करें। यही त्याग तलवार का काम करता है इन्हें काट डालने में; ताकि ऊपर जा सकें। बिना इसके वह मूलाधार ब्रह्म मिलने का नहीं। इस तरह इसके काटने का उपाय बताया है सही। फिर भी यह है दरसल लोहे का चना। सांसारिक वासनायें इतनी मजबूती से जकड़ी और चारों ओर फैली हैं कि इनसे पिंड छुड़ाना मुश्किल है। इस तरह संसार के पार जाना वैराग्य और विवेक के सहारे आसान भी है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मुश्किल भी। क्योंकि जहीं जाइये एक फन्दा लगा है और हम उसी में फंस जाते हैं।

कहते हैं कि किसी अच्छे पंडित ने मौत से पहले ही किसी प्रकार यह जान लिया कि मरने पर सूअर का शरीर पाऊँगा। उनने अपने बच्चों को यह बात कह दी। यह भी बता दिया कि कहाँ कब सूअर का शरीर मिलेगा। उनने पहचान भी बता दी कि फलाँ-फलाँ चिह्न होंगे; ताकि लड़के बेखटके पहचान सकें। फिर उनने कहा कि वह योनि तो बड़े कष्ट की है, यह जानते ही हो। इसीलिये पता लगा के फौरन मार देना; ताकि कष्टमय जीवन से चटपट छुटकारा हो जाय। पीछे जब वह मर गये तो ठीक समय पर खोजते-पूछते उनके लड़के उस मुक़ाम पर पहुँची तो गये जहाँ वह सूअर बने विचरते थे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उनने पता भी पा लिया कि हो न हो, यही वह सूअर है। उसके बाद उसके मालिक से बातें करके सूअर के मारने का हर्जाना भी तय कर लिया। बाद में तलवार लेके उसके पास पहुँचे ही थे कि खत्म कर दें कि वह गिड़गिड़ा के बोल उठा कि "नहीं-नहीं, मुझे मत मारो, तुम्हें शपथ है, मैं खूब मौज़ में हूँ"। देखा न ? यही है भारी बन्धन। आत्मा जहीं हो, मौज ही मालूम पड़ती है।

इसी से नीचे-ऊपर, इधर-उधर सर्वत्र ही जहाँ भी इस संसार की शाखायें हैं बन्धन का ही काम करती हैं। क्योंकि आखिर त्रिगुणात्मक तो हुई और तिहरी रस्सी बड़ी मजबूत भी होती है। सभी जगह इन्द्रियों के विषय सुन्दर कोपलों जैसे लुभावने दीखते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि बुरे-भले कर्मों के संस्कार के रूप में वासनायें पैदा होती हैं, फिर उनके फलों को भोगने के बाद दूसरे ढंग की वासनायें पैदा होती हैं, जिन्हें चसक कह सकते हैं। उन्हीं के करते

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हम पुनरपि कर्मों में लगते हैं, इस तरह यह चक्र चालू रहता है। यों तो वास्तविक मूल ब्रह्म हुई। मगर जिस मूल को काटना है, ताकि यह वृक्ष सूख जाये, वह तो यह वासनायें ही हैं। ये इतनी गहरी और नीचे पड़ी रहती हैं कि इन्हें पकड़ना कठिन है। यही हैं इस अश्वत्थ की अपनी निजी जड़ें। अश्वत्थ की जड़ें यों भी सचमुच बहुत गहराई में जाती हैं। वे बहुत ज्यादा होती भी हैं। वासनाओं की भी यही हालत है। ये भी अनन्त हैं, बहुत फैली हैं। आशा की बात यही है कि पूर्ण-विवेक-दृष्टि के सामने न तो ये वासनायें और न संसार का यह लुभावना रूप ही टिक सकता है। केले की मूसली के छिलके की तरह उधेड़-वुन करते जाइये और अन्त में कुछ भी सार हाथ नहीं लगता। पता ही नहीं चलता कि कहाँ शुरू, कहाँ बीच और कहाँ अन्त है। समूचे का समूचा निस्सार ही सिद्ध हो जाता है।

इस पन्द्रहवें अध्याय में जो खूबी है वह यही कि इसने हमारी पुरानी भावनाओं से फायदा उठा के वासुदेव के रूप में ही संसार वृक्ष को सामने ला दिया है। इस रूपक के द्वारा इसे काट बहाने की भावना भी जागृत कर दी है। नहीं तो कहाँ क्या करें और इसे कैसे खत्म करें यह अथाह समुद्र की सी बात हो रही थी। इसमें उपनिषदों की भी सहायता इसे मिली है। उनका अनुसरण भी अच्छी तरह हो गया है। पहले की सारी बातें सुनने और गुणातीत अवस्था को जानने के बाद जो एक प्रकार की किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता सी अर्जुन को और दूसरों को भी हो सकती थी कि कहाँ से कैसे इन गुणों को काटना शुरू करें, वह भी इस प्रकार दूर हो गई। उसे खयाल करके ही तो कृष्ण ने बिना पूछे ही यह कहना शुरू भी कर दिया। चौदहवें अध्याय के अन्त में यह कहा है जरूर कि आत्मा की भक्ति करें। मगर वह तो आसान नहीं। मन को बाहर से रोकना जो पड़ेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यह रोक किस चीज से कैसे शुरू करें, यही तो सबसे बड़ा सवाल था। ऐसी बात का मालूम हो जाना जरूरी था जहाँ से श्रीगणेश करते। कृष्ण ने इस वृक्ष को, इसकी जड़ों को और काटने के हथियार को भी बता के सारी समस्या ही हल कर दी। इस तरह गुणों के निरूपण से भी आसानी से फायदा उठाया जा सकता था। क्योंकि जब सभी चीजें बन्धक हैं, खतरनाक हैं, तो उनसे मन को हटाने में दिक्कत वैसी न होगी जैसी पहले होती। इन्हीं सब विचारों को मन में रखके—

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥

श्रीभगवान ने कहा (कि) ऊपर जिसकी जड़ें और नीचे शाखायें हों तथा वेद मंत्र जिसके पत्ते हों ऐसे (संसार रूप) पीपल वृक्ष को सदा रहने वाला कहा गया है। (मगर) उसे जो यथार्थ रूप में जान जाता है वही वेद ज्ञाता है।१।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥२॥

(दरअसल) उसकी शाखायें नीचे-ऊपर (सर्वत्र) फैली हैं (जो) गुणों के चलते खूब बढ़ी हैं और विषय ही जिनकी कोंपलें हैं। (उसकी) जड़ें भी बहुत गहराई में जाके खूब फैली हुई हैं (और) इस दुनिया में कर्म करने में (चस्का पैदा करके लोगों को उसमें) लगाती हैं।२।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढ़मूलमसंगशस्त्रेण दृढ़ेन छित्त्वा ॥३॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्त्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥४॥

(लेकिन इसका जैसा सनातन और दृढ़) रूप (कहा जाता) है वैसा (तो विचारने पर) दीखता नहीं और न इसके आदि, अन्त (और) मध्य (का ही पता चलता है) । (फिर भी) जिसकी जड़ें वहुत ही मजबूत है उस इस अश्वत्थ वृक्ष के बन्धनों को (वैसे ही) मजबूत वैराग्य—आसक्ति-त्याग—रूपी शस्त्र से काट के—संसार से वैराग्य—प्राप्त करके—अनन्तर उस पद का अन्वेषण करना चाहिए जहाँ जाने पर फिर वापिस आना—जन्म-मरण—नहीं होगा । 'हम उसी आदि पुरुष—परमात्मा—की शरण आए हैं, जिससे यह पुरानी सृष्टि पैदा हुई', (इसी प्रकार वह अन्वेषण करना चाहिए) ।३।४।

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥५॥

अभिमान और मोह से रहित, आसक्ति के दोष से बरी, आत्मा में निरन्तर लगे हुये, सभी कामनाओं से शून्य, सुखदुःख संज्ञक द्वन्द्वों से छुटकारा पाये पूर्ण ज्ञानी ही उस अविनाशी पद को पाते हैं ।५।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

न तो वहाँ सूर्य का प्रकाश जाता है, न चन्द्रमा का और न अग्नि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

का ही (और) जहाँ जाने पर फिर वापिस नहीं आते वही मेरा परम धाम है ।६।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥८॥
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥९॥

मर्त्यलोक में मेरा ही सनातन अंश जीव बन के प्रकृति में रहने वाली मनसंयुक्त छे इन्द्रियों को साथ खींच ले जाता है । जब (नया) शरीर धारण करता है और जब मरता है, इन इन्द्रियों को वैसे ही साथ ले जाता है जैसे हवा गन्ध के आश्रय (पुष्पादि) से गन्ध ले जाती है । श्रोत्र, चक्षु, त्वक्, रसना, घ्राण और मन (इन्हीं छे इन्द्रियों) का अधिष्ठाता बन के विषयों का सेवन करता है ।७।८।९।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०॥
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥११॥

मरणोपरान्त प्रयाण करते हुए, नया शरीर धारण करके उसमें स्थित या इन्द्रियादि के साथ विषयों को भोगते हुए भी इस आत्म-तत्त्व को अज्ञानी नहीं देख पाते; (किन्तु) ज्ञान दृष्टि वाले ही देखते हैं । (जिन्हें यह दृष्टि न भी प्राप्त हुई है ऐसे) योगी भी (समाधि

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आदि के रूप में) यत्न करते हुए इस आत्मा की झाँकी अपने भीतर ही पा जाते हैं (मगर) जिनके मन मलिन हैं ऐसे मूढ़ लोग हजार यत्न करके भी नहीं देख पाते हैं ।१०।११।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥१२॥
गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥१३॥
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥१४॥
सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

सूर्य में रहनेवाला जो तेज समस्त संसार को आलोकित करता है, जो (तेज) चन्द्रमा में और जो अग्नि में है, वह (सभी) तेज मेरा ही जानो। पृथ्वी में प्रवेश करके अपने बल से मैं ही पदार्थों को धारण कर रखता हूँ। (नहीं तो पृथ्वी धँस जाती, टूट जाती और पहाड़ वगैरह का भारी बोझ बर्दास्त कर न पाती।) रसमय चन्द्रमा बनके सभी अन्नादि औषधियों को पुष्ट करता हूँ। मैं ही जठरानल होके प्राणधारियों के शरीर में रहता और प्राण तथा अपान (की धौंकनी) से प्रदीप्त होके चार प्रकार के खाद्य पदार्थों को पचाता हूँ। मैं ही सबों के हृदयों में प्रविष्ट हूँ। मुझी से (लोगों को पदार्थों के) स्मरण और ज्ञान होते हैं, विस्मृति और भूल होती है। मैं ही सभी वेदों के द्वारा जाना जाता हूँ। वेदान्त का बनानेवाला एवं वेदवेत्ता भी मैं ही हूँ। १२।१३।१४।१५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

दुनिया में दो पुरुष हैं, क्षर या विनाशी तथा अक्षर या अविनाशी। सभी जड़ पदार्थ यानी प्रकृति क्षर है और निर्विकार आत्मा अक्षर। (इन दोनों से ही) उत्तम पूरूष तो तीसरा है जो परमात्मा कहा जाता है और जो अविनाशी, शासनकर्त्ता (एवं) सारी दुनिया के भीतर प्रवेश करके उसे कायम रखता है। क्योंकि मैं तो क्षर से निराला हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ। इसीलिये वेद में और लोक में भी पुरुषोत्तम विख्यात हूँ। १६।१७।१८।

यो मामेवमसंमूढ़ो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१६॥
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

हे भारत, जो पूर्ण विवेकी मुझ पुरुषोत्तम को इस प्रकार जान जाता है वही सब पदार्थों का जानकार है और मुझे सम्पूर्ण जगत् के रूप में ही भजता है। हे अनघ, मैंने यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र बताया है। हे भारत, इसे ही जानने पर बुद्धिमान हो सकते हैं और कृतकृत्य भी। १६।२०।

इति० पुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

—:o:—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सोलहवाँ अध्याय

जिस ज्ञान के बाद कृतकृत्यता हो जाती है और मस्ती आ जाती है, जिस दृष्टि के चलते जर्रे-जर्रे और परमाणु-परमाणु में 'अहम्' नजर आता है, आत्मा ही दीखती है, वह कैसे प्राप्त हो यह बात अन्तिम बार अच्छी तरह बता दी जाय तो बेड़ापार हो। यद्यपि पहले भी इसके उपाय बताये गये हैं; अभी-अभी पन्द्रवें अध्याय में ही यही यत्न सुझाया गया है; तथापि उतना ही कहना काफी नहीं है। उसमें अभी कसर है, कुछ और भी कहना रह जाता है जिसे पूरा करना जरूरी है। वह कमी खासी है, महत्त्वपूर्ण है, न कि ऐसी ही तैसी। उसे पूरा न कर देने में खतरा है, भारी खतरा है, यह बात कृष्ण स्वयमेव समझते थे। यही कारण है कि उनने बिना कहे-सुने, बिना पूछे ही उसे पूरा कर दिया और इसमें पूरे दो—१६-१७—अध्याय लगा दिये ! यह कोई मामूली बात नहीं है, यह मानना ही होगा।

बात असल यह है कि ज्ञान की प्राप्ति के साधनों को बता देने पर भी दो चीजें रह गई हैं। एक तो यह कि इन साधनों पर चलने में खतरे क्या हैं, उन्हें अच्छी तरह से बता देना। दूसरे यह कि जो भी साधन कहे गये हैं उनमें बुनियादी और मौलिक चीज क्या है जिसके बिना बाकी बेकार हो जाते हैं। साधनों के इन दोनों पहलुओं को, या यों कहिये कि इन दो स्पष्ट पहलुओं के साथ-साथ उन साधनों को अन्त में याद कर करा लेना जरूरी था। पहली बात निषेधात्मक (negative) है और दूसरी विधानात्मक (positive)। इस दृष्टि से भी इन्हें जान लेना जरूरी था। निषेधात्मक पहलू में सबसे बड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

खूबी यह है कि वह न सिर्फ ज्ञान प्राप्ति के ही लिये जरूरी है, किन्तु उसके बाद भी आत्मज्ञानी पुरुष के व्यवहार में वह कसौटी का काम करता है और इस प्रकार समाज-हित-साधन-में काम आता है। उसी प्रकार विधानात्मक पहलू भी ऐसा पारस है कि हजारों लोहे को सोना बना देता है। उसके हासिल हो जाने से मनुष्य के व्यावहारिक जीवन की हजारों विधिनिषेधवाली दिक्कतें हट जाती हैं और क्या करें, क्या न करें, इस तरह के उठनेवाले रोज के पचड़ों से पिंड छूट जाता है। इस उधेड़बुन की जरूरत रही नहीं जाती है। इस दृष्टि से यह भी व्यावहारिक जीवन की कसौटी ही है। मगर दोनों की उपयोगिता का रूप दो होने से दोनों की महत्ता भी दो है। जिस प्रकार ये खुद निषेधात्मक और विधानात्मक हैं, उसी प्रकार इनकी उपयोगिता भी है। इस प्रकार इन दो अध्यायों का गीता धर्म की दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व है। यह बात हम पहले ही बखूबी समझा चुके हैं।

इन दो बातों में भी निषेधात्मक पहलू अपेक्षाकृत सरल है। किसी चीज से बचना उतना कठिन नहीं जितना किसी बात का सम्पादन करना। यह बात भी है कि निषेधात्मक पहलू कूड़ा करकट हटा के सफाई कर देता है। उसके बाद विधानात्मक वस्तु के लाने या कायम रखने में गन्दगियों का खतरा नहीं रहने से आसानी हो जाती है। जब तक प्याले को धोधाके निर्मल न बनायें उसमें दूध रखा कैसे जायगा? और उस रखने के मानी क्या होंगे? वह गन्दा और जहरीला न बन जायगा? यही कारण है कि सोलहवें अध्याय में निषेधात्मक पहलू का ही विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इसके पूरा हो जाने पर ही सत्रहवें में विधानात्मक पहलू की बातें विस्तार के साथ लिखी गई हैं। इस तरह गीतोपदेश की प्रगति स्वाभाविक ढंग से हो सकी है। इसकी इस अपूर्व लोकप्रियता का यह भी एक कारण है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इस दृष्टि से यदि हम सोलहवें अध्याय के प्रारंभ में कही गई दैवी सम्पत्तियों पर गौर करें, तो देखेंगे कि जो बातें यहाँ कही गई हैं वह अधिकांश या रूपान्तर में सब की सब वही हैं जिनका उल्लेख "अमानित्वमदंभित्व" (१३।७-११) आदि श्लोकों में हुआ है। संख्या बढ़ जाने पर खामखा कुछ नई चीजें भी नजर आयेंगी ही। जहाँ पहले कुल इक्कीस ही बातें कही थीं तहाँ अब पूरी सत्ताईस आ गईं! एक तो इसीसे अन्तर हो गया। दूसरे, गीता का काम हूबहू दुहराना या 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' तो करना है नहीं। इसका तो काम है प्रकारान्तर से उन्हीं बातों को इस तरह कहना कि सुननेवाले को ऊब न हो सके और बातें दिल में बखूबी बैठ भी जायें। आखिर कठिन तो हईं। इसीलिये दिल में उनका जमना आसान नहीं है। जरूरत भी उन पर प्रकारान्तर से जोर देने की इसीलिये पड़ती है।

इसे यों समझें। पतंजलिने योग सूत्रों में जिन यमों और नियमों को गिनाया है वह योग के लिये नींव हैं, दीवार हैं। उनके बिना योग का महल खड़ा होई नहीं सकता। इसीलिये योग के आठ अंगों में पहले दो यही यम-नियम ही हैं। हम पहले ही उस सूत्र को लिख भी चुके हैं। यह योग है भी क्या यदि गीता की वह समाधि या ध्यान नहीं है जो ज्ञान की पूर्णता के लिये अनिवार्य माना गया है और जिसका व्योरे के साथ गीता ने वर्णन किया है? इसीलिये यम-नियम ही ज्ञान-प्राप्ति के मूल साधन हैं। दोनों ही पाँच-पाँच प्रकार के माने जाते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय—चोरी न करना—ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह या पदार्थों और लवाजिमका न जमा करना यही पाँच यम हैं, "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" (२।३०)। इसी प्रकार शौच—शुचिता या पवित्रता—संतोष, तप, स्वाध्याय—सद्ग्रंथों का अभ्यास और ईश्वर-भक्ति यही नियम हैं, "शौच

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः" (२।३२)। इनका जो कुछ विवरण भाष्य, टीकाओं में तथा स्मृतियों में दिया गया हैं उसे पढ़ के इन्हीं के आईने में अगर पहलेवाले २१ और यहाँ के २७ को देखें तो साफ पता चलेगा कि वे यही दस हैं, वे नामान्तर से इन्हीं का स्पष्टीकरण मात्र हैं।

इस सिलसिले में एक बात और भी ध्यान देने की है। पुराने लोगों ने प्रायः कहा है कि इन यम-नियमों में भी यमों को तो कभी छोड़ नहीं सकते। उन्हें तो सदा करना ही होगा। हाँ, नियमों को ज्ञान के बाद छोड़ सकते हैं, छोड़ दें, "यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परस्त्यजेत्" (भागवत ११।१०।५)। पतंजलिने भी यमों के बारे में लिखा है कि इनके पालन के लिये किसी खास देश, विशेष जाति, वंश, कुल, निश्चित समय या कारण जरूरी नहीं है कि उन सबों के पूरा न होने या न रहने पर ये यम छोड़ दिये जायँ। ये तो महाव्रत हैं और इन्हें हर हालत में सब देश-काल में सभी आदमियों को करते ही रहना होगा, "जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्" (२।३१)। असल में इन यमों का दूसरों से, समाज से सम्बन्ध होता है। यह बात नहीं है कि इन्हें जो पालन करे, जो इनपर अमल करे उसी का ताल्लुक और हिताहित इनसे होता है। यही कारण है कि इन्हें समाज-हित-साधन के खयाल से ही, या यों कहिये कि समाज की बुनियाद समझ के ही निरन्तर करना जरूरी हो जाता है। इसी दृष्टि से इनका महत्त्व ज्यादा है। महाव्रत भी इन्हें कहने का यही अभिप्राय है।

विपरीत इसके नियमों को व्रत ही माना हैं। उनके देखने से ही साफ मालूम हो जाता है कि उनका ताल्लुक केवल उसी व्यक्ति से है जो उनपर अमल करे। इसीलिये अपनी जरूरत न रहने पर उन्हें वह छोड़ भी दे सकता है, छोड़ भी देता है। सोलहवें अध्याय में जो

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कुछ कहा गया है वह इन्हीं धर्मों के, इसी पहलू पर पूर्ण प्रकाश डाल देता है।

बेशक, शुरू के श्लोकों में विधानात्मक बातें गिनाई गई हैं। इस तरह पूरे तीन श्लोकों को उनने ही ले लिया है। विपरीत इसके एक ही—चौथे—श्लोक में निषेधात्मक बात कही गई है। मगर जब हम गौर करें तो पता लगेगा कि दैवी सम्पत्ति के रूप में जो बातें कही गई हैं वह आसुरी संपत्ति के मुकाबिले के ही लिये; ताकि इनका महत्त्व झलक जाये और लोग मुस्तैदी से इन्हें सम्पादन करें। यही वजह है कि जहाँ तेरहवें अध्याय में एक भी आसुरी बात को न कहके साफ ही कह दिया था कि दैवी सम्पत्तियों एवं ज्ञान के साधनों से उल्टी जितनी हैं वह सभी आसुरी सम्पत्ति तथा अज्ञान के साधन हैं और इस तरह कम से कम इक्कीस तो आ गई हैं, तहाँ यहाँ चौथे श्लोक में सिर्फ छे का ही नाम लेके काम खत्म किया है। इससे यह मतलब तो हर्गिज नहीं निकलता कि बाकियों को छोड़ दिया है। यह भला होगा कैसे? फलतः इसका यही अभिप्राय है कि नमूने के रूप में छे को गिनाके इसीलिये छोड़ दिया है कि आगे के कुल पूरे १६ (७-२२) श्लोकों में इन्हीं का विवरण मौजूद है, इनका नंगा चित्र खींच दिया गया है। बल्कि छठें श्लोक को भी उन्हीं में गिन सकते हैं। क्योंकि भूमिका के ही रूप में वह आया है। उसमें कहा गया है कि जरा गौर से सुनिये कि बात क्या है। इसीलिये छे के मानी हैं कम से कम सत्ताईस दैवी सम्पत्तियों के विपरीत सत्ताईस आसुरी तो जरूर ही। अगर कुछ और भी आ जायें तो ठीक ही है। बीच में जो पाँचवाँ श्लोक है वही इस अध्याय के मुख्य विषय की ओर ध्यान दिलाता है। वह बताता है कि यही इसकी असल बात है। उसमें अर्जुन को आश्वासन देने की बात तो यों ही प्रासंगिक है; ताकि उसकी घबराहट जाती रहे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तीन गुणों का पहले वर्णन आता रहा है। उनमें सत्त्वगुण के सम्पादन पर "नित्यसत्त्वस्थः" (२।४५) में जोर दिया गया है। उसी गुण के फलस्वरूप कुछ विशेषताएँ शरीर में नजर आती हैं। शरीर और इन्द्रियाँ हलकी होती हैं, भारी नहीं रहती हैं, आलस्य नहीं रहता है और प्रकाश प्रतीत होता है। यह बात चौदहवें (१४।११) में कही गई है। ऐसी ही दशा में जितनी भी सात्त्विक बातें मनुष्य में पाई जाती हैं उन्हीं को दैवी सम्पत्ति कहा है। विपरीत इसके रजोगुण एवं तमोगुण की वृद्धि की दशा में जो बातें चौदहवें (१४।१२-१३) में पाई जाती हैं तथा उन्हीं के फलस्वरूप उनका जितना भी परिवार हो वही आसुरी सम्पत्ति है। इसमें भी तामसी बातों पर ही ज्यादा जोर है। इस दल में उन्हीं की प्रधानता है। लेकिन जब राजसी बातें दैवी सम्पत्ति में आ सकती हैं नहीं, तो उन्हें आसुरी में ही जाना होगा।

अभिजात शब्द में जो 'अभि' आया है उसके चलते ऐसा अर्थ हो जाता है कि जो दैवी या आसुरी सम्पत्तियों में लिपटा और सना हुआ हो, जिसके चारों तरफ वही पाई जायें।

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

श्री भगवान बोले—हे भारत, निर्भयता, अन्तःकरण की निर्मलता, ज्ञान एवं योग में जम जाना, दान, इन्द्रियों पर नियन्त्रण, यज्ञ, सद्ग्रन्थ-पाठ, तप, नम्रता, अहिंसा, सत्य, क्रोध का त्याग, पदार्थों का त्याग, शांति, दूसरे का ऐब न देखना, पदार्थों पर दया, विषयों की ओर ज्यादा झुकाव न होना, कोमलता, लज्जा, चपलता का न होना, हिम्मत, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, दूसरों को सताने का खयाल न होना, मगरूरी का न होना—(यही चीजें) दैवी सम्पत्ति वालों में पाई जाती हैं ।१।२।३।

दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥४॥

हे पार्थ, दिखावटी बात, फूल के कुप्पा हो जाना, घमंड, क्रोध, कटुवचन और अज्ञान—(यही) आसुरी सम्पत्ति वालों में पाये जाते हैं ।४।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पांडव ॥५॥

दैवी संपत्ति जन्म-मरण से छुटकारा दिलाती है और आसुरी बन्धन में डालती है ऐसा माना जाता है । हे पांडव, चिन्ता मत करो, तुम दैवी संपत्ति वाले ही हो ।५।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिंदैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥६॥

हे पार्थ, पदार्थों की (और इसीलिए प्राणियों की भी) सृष्टि दोई प्रकार की है—देव और असुर । इनमें दैवी प्रकृति वालों को तो विस्तार से कही चुके हैं । (अब) आसुरों को भी मुझसे सुन लो ।६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥८॥

असुर लोग कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य जानते ही नहीं। उनमे पवित्रता, आचरण—जैसा कहना वैसा करना और सत्य का तो पता ही नहीं होता। सत्पदार्थ या ब्रह्म से ही यह जगत बना है, उसी में कायम है और अन्त में उसी में जा मिलता है, ऐसा न मानके वह जगत् को बिना ईश्वर के ही मानते हैं (और कहते हैं कि कामवासना के वशीभूत स्त्री-पुरुष या नर-मादा के सम्बन्ध से पैदा होने के अलावे इसमें और हुई क्या ? ।७।८।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥

जिनकी आत्मा पतित हो चुकी है ऐसे नासमझ लोग इसी विचार को लेके जगत के अहित बन जाते और इसके सत्यानाश के लिए (घोर से) घोर कर्म तक कर डालते हैं ।९।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान प्रवर्त्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥१०॥

कभी पूरी न हो सकने वाली आकांक्षायें लिए, दिखावटी बात घमंड तथा नशे में चूर और नापाक कामों में ही लगे (ये लोग) भूल से गलत बातों के हठ में आके काम करते रहते हैं ।१०।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥११॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥१२॥

मरण तक कायम रहने वाली बेहिसाब फिक्र में डूबे हुए 'खाओ-पीओ, मौज करो' यही जिनका सबकुछ निश्चय है, सैकड़ों आशाओं के फन्दे में फँसे हुए तथा विषयों के भोग में ही लिपटे हुए (ऐसे लोग) अन्याय से ही धन-संचय का यत्न करते रहते हैं।११।१२।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान सुखी ॥१४॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशोमया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

यह चीज तो आज मैंने हासिल कर ली, यह (दूसरी) भी पालूँगा ही, इतना धन तो मेरे पास हई (और) यह और भी मिली जायगा, अमुक शत्रु तो मैंनें खत्म करी दिया, दूसरों को भी मार डालूँगा, मैं सबका मालिक हूँ, मैं हो भोग करने वाला हूँ। सब तरह से सम्पन्न, बलवान और सुखी भी मैं ही हूं। धनी हूँ, कुलीन हूँ। मेरे समान और कौन है ? यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और मौज करूँगा। इसी तरह की भूल-भूलैयाँ में (वे लोग) पड़े रहते हैं। (इस तरह) अनेक (वाहियात) खयालों में ही भूले, मोह के जाल से अच्छी तरह घिरे और विषय भोग में डूबे (ऐसे लोग) गन्दे नरकों में जा डूबते हैं।१३।१४।१५।१६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

आत्मसंभाविता: स्तब्धा: धनमानमदान्विता: ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

खुद अपनी तारीफ के पुल बाँधने वाले, उजड्ड तथा धन के अभिमान के नशे में चूर वे लोग दिखाने के लिए नाममात्र के यज्ञ भी कर डालते हैं।१७।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिता: ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयका: ॥१८॥
तानहं द्विषत: क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥

अहंकार, बल, मनमानी घरजानी, काम तथा क्रोध के वशीभूत अपने एव दूसरे शरीरों में आत्मा के रूप में रहने वाले मुझसे बुरी तरह जलने वाले और हर चीज के निंदक (ही ये होते हैं । इस तरह जलने या द्वेष करने वाले उन निर्दय एवं नापाक नराधमों को मैं इस संसार की आसुरी योनियों में ही निरन्तर डाला करता हूँ।१८।१९।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यांत्यधमां गतिम् ॥२०॥

हे कौन्तेय, (ये) मूढ़ लोग लगातार (अनेक) जन्मों में आसुरी या गन्दी और पतित योनियों में ही जन्म लेने के कारण मुझ (आत्मा-परमात्मा)—को तो जान पाते ही नहीं । फलत: उनकी और भी अधम गति होती है।२०।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

आत्मा को चौपट करने वाले नर्क के यही तीन द्वार हैं—काम, क्रोध, लोभ। इसलिये इन तीनों से पिंड (जरूर) छुड़ा लें। हे कौन्तेय, नर्करूपी अन्धकार के इन तीन द्वारों से जिसका पल्ला छूटा है वही अपने कल्याण का काम कर सकता है और फलस्वरूप परम गति प्राप्त करता है।२१।२२।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥२३॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥२४॥

जो शास्त्रीय प्रणाली को छोड़ के अपने मन से चलेगा उसका न तो कार्य ही सिद्ध होगा, न उसे आराम ही मिलेगा और न परमगति ही। इसीलिए तुम्हें उचित है कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य की पक्की व्यवस्था करने में शास्त्र को ही प्रमाण मानो। शास्त्र विधान को जान कर ही तुम्हें इस दुनिया में सब कुछ करना होगा।२३।२४।

इति० दैवासुरसंपद्विभागयोगो नामषोडशोऽध्यायः ॥१६॥



RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सत्रहवाँ अध्याय

गीता में श्रद्धा की बात पहले बहुत बार आ चुकी है। किसी भी काम की सफलता के लिये उसे बुनियादी तौर पर जरूरी माना गया है। "श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तः" (३।३१), "श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं" (४।३९), "अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च" (४।४०), "अयतिः श्रद्धयोपेतः" (६।३७), "श्रद्धावान्भजते" (६।४७), "श्रद्धयार्चितुमिच्छति", "श्रद्धां तामेव", "स तया श्रद्धया युक्तः" (७।२१-२२), "अश्रद्दधानाः पुरुषाः" (९।३) तथा "येप्यन्यदेवताभक्ता" (९।२३) आदि में सभी प्रकार की सफलता के लिये यह श्रद्धा आवश्यक मानी गई है। हमने जगह-जगह यह बात स्पष्ट भी कर दो है। फिर भी दार्शनिक ढंग से उसका विवेचन और विश्लेषण अभी तक नहीं हो पाया है और है यह निहायत जरूरी बात। ऐसी मौलिक बात यों ही एक श्रद्धा शब्द से या इसी के सूचक किसी और शब्द से ही कह दी जाय, यह तो अत्यन्त नाकाफी है। इस बात का तो पूरा विवरण होना चाहिये। इसकी सारी भीतरी बातें खुल जानी चाहियें। जैसे सोलहवें अध्याय में यम-नियमों का हीर निकालके रख दिया गया है और उस सम्बन्ध की सारी बातों का नग्न चित्र खींचा गया है, उससे कम जरूरत इस बात की नहीं है। प्रत्युत सोलहवें में तो अन्ततोगत्वा निषेधात्मक बात ही कही गई है न? परन्तु यह है विधानात्मक। इसीलिये इसकी कठिनता तथा उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। ऐसी दशा में इसका विश्लेषण और भी ज्यादा होना चाहिये और यही बात सत्रहवें अध्याय में की गई है। गीता धर्म से इसका कितना गहरा एवं बुनियादी ताल्लुक है और इस निरूपण का असली आशय क्या है यह बात हमने खूब विस्तार के साथ पहले ही बता दी है। उसे पढ़े बिना इसके पढ़ने में न तो मजा आयेगा और न यह बात ठीक-ठीक समझी ही जा सकेगी।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यह श्रद्धा तीन प्रकार की मानी गई है। क्योंकि श्रद्धा तो मनुष्य में ही होती है और उसके हरेक गुण होते हैं तीनों गुणों के आधार पर बनी उसकी प्रकृति के ही अनुसार। यह बात भी अच्छी तरह प्रतिपादित हो चुकी है। यही वजह है कि श्रद्धा भी तीन प्रकार की होती ही है। इसीलिये उसी श्रद्धा के अनुसार किये गये सभी कर्मों का भी तीन प्रकार का हो जाना जरूरी है। इसी दृष्टि से नमूने के रूप में ही भोजन, यज्ञ, तप, दान का वर्णन भी आ गया है। असल में भोजन का ताल्लुक तो सीधे श्रद्धा से है नहीं। हाँ, गुणों से तो हई। यह बात भी है कि जैसा भोजन होता है वैसा ही स्वभाव भी होता है। इस तरह भोजन का सम्बन्ध सभी चीजों से मूल रूप में हो जाता है। श्रद्धा भी इसीलिये भोजन के साथ घनिष्ठता के साथ जुट जाती है। इसीलिये पहले भोजन का ही विवरण देके उसके बाद तीन प्रमुख कर्मों का विवरण दिया है। श्रद्धा के बिना जो कुछ भी किया जाता है वह गीता के दायरे के बाहर की चीज है। इसीलिये गीता उसे पूछती तक नहीं। वह गीता की गिनती में हई नहीं। वह तो न यहाँ का है, न वहाँ का। वह तो "धोबी का कुत्ता न घर का है, न घाट का"। इसीलिये गीता ने इस अध्याय के अन्त में उसे असत्, व्यर्थ, रद्दी कहके एक प्रकार से धिक्कारा है।

तप में एक बात और भी आ गई है। वह कायिक, वाचिक, मानसिक रूप में तीन प्रकार का होता है। फिर हरेक के तीन-तीन प्रकार, श्रद्धा के भेद से कहिये, गुण के भेद से कहिये, होने से तप के नौ प्रकार हो गये हैं।

इसका प्रसंग भी सोलहवें अध्याय के अन्त वाले दो श्लोकों ने ला दिया है। वहाँ तो सीधा प्रसंग था काम, क्रोध एवं लोभ के ही मिटाने का। मगर वह तो निचोड़ ठहरे उन समूची सम्पत्तियों के ही जो समाज के लिये घातक हैं। फिर आत्म दर्शन जैसी नाजुक चीज का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

क्या कहना ? इसे तो वे पलक मारते ही मटियामेट कर दें। इसीलिये जो मार्ग उनके मिटाने का वहाँ बताया गया है वह केवल काम, क्रोधादि तक ही सीमित न रह के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य क्षेत्र के विस्तृत दायरे के भीतर आ जानेवाली सभी बातों को ही उसने साथ में ले लिया है। फलतः कर्म या कर्त्तव्य मात्र के ही बारे में तय पाया गया कि शास्त्रीय विधान को जान के ही तदनुसार ही अमल करना चाहिये। ठीक भी है। हरेक बातों के जुदे-जुदे शास्त्र होते हैं। यहाँ तक कि खेल-कूद के लिये भी लम्बे-चौड़े शास्त्र बन चुके हैं। इसलिये यह तो उचित ही है कि जो भी कुछ करना हो उससे पहले तत्सम्बन्धी शास्त्र का अनुशीलन किया जाय, उसके जानकारों से ही पूछ-ताछ की जाय। दूसरा चारा हई नहीं, यदि सफलता चाहते हैं।

इस पर एकाएक अर्जुन के भीतर खलबली का मच जाना और उसका चटपट प्रश्न कर बैठना स्वाभाविक था और इसीसे इस अध्याय का श्रीगणेश भी हो गया। शास्त्र और उसका विधान ये शब्द कुछ ऐसे हैं कि जनसाधारण को खटक जाते हैं, इस मानी में कि वे बहुत बड़ी चीजें हैं जो उनकी पहुंच के बाहर की हैं। तिसपर भी तुर्रा यह कि "किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता." (४।१६) के द्वारा खुद कृष्ण ने ही पहले ही कह दिया है कि कर्म-अकर्म की पहेली ऐसी पेचीदी है कि बड़े-बड़े दिमागदार भी चकरा उठते हैं तो फिर जनसाधारण उन दिमागदारों के बनाये शास्त्र को कैसे जान पायेंगे ? यह तो निरी असंभव सी बात है। और अगर न जानें तो सारा कारबार ही बन्द हो जाय। क्योंकि ऐसा ही हुक्म हो गया। अर्जुन ने स्पष्ट देखा कि जिस पर हमारा कोई वश न हो उसी के पहिये में हमें और हमारे कर्त्तव्याकर्त्तव्य को बाँध देना कहाँ तक उचित है। उसे तो यह बात जँच न सकी। हाँ, जो चीज अपने वश की है और जिसे ईमानदारी तथा दृढ़ संकल्प कहते हैं, अपने लक्ष्य

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

और उसकी सिद्धि के उपाय में अटल विश्वास कहते हैं, उसके ऊपर यदि कर्म-अकर्म की निर्भरता हो तो यह बात समझ में आती है। यही उचित भी है। इसी का दूसरा नाम श्रद्धा है। लेकिन अगर किसी ने श्रद्धा के साथ कर्म तो किया, फिर भी शास्त्रीय विधिविधान नहीं जानता है, तो उसकी क्या गति होगी, यह प्रश्न स्वाभाविक था। उसने समझा कि वह तो कहीं का न रहेगा, जैसा कि अभी कहा है। मगर यह तो ठीक नहीं जँचता।

निष्ठा, गति या हालत एक ही बात है और घबरा के यही जानने के लिये—

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥१॥

अर्जुन ने पूछा (कि) हे कृष्ण, जो लोग शास्त्रीय विधि की पाबन्दी न करके श्रद्धा के साथ यज्ञादि क्रिया करते हैं उनकी क्या हालत है? (उनकी गिनती किस श्रेणी में है?) सत्त्व, रज या तम में? ।१।

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥२॥
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥

श्री भगवान बोले (कि) देहधारियों की वह स्वाभाविक श्रद्धा तीन तरह की होती है—सात्त्विक, राजस और तामस। इसके बारे में और भी सुन लो। हे भारत, सबकी श्रद्धा सत्त्वगुण (की कमी-बेसी, प्रधानता-अप्रधानता) के ही अनुसार होती है। (क्योंकि)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मनुष्य तो श्रद्धामय है। (इसीलिए) जिसकी जैसी श्रद्धा है वह वैसा ही है ।२।३।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥४॥
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥५॥
कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥६॥

सात्त्विक जन देवताओं का यजन-पूजन करते हैं, राजस लोग यक्ष-राक्षसों का और शेष तामस लोग प्रेतों तथा भूतगणों की यज्ञ-पूजा करते हैं। शास्त्रों में विहित न हो ऐसे तप को दंभ, अहंकार से युक्त और काम, राग, बल वाले जो लोग करते हैं (और इस तरह) शरीर के भीतर रहने वाले पदार्थ समूह को और अन्तःकरण में रहने वाले मुझ आत्मा को भी कमजोर करते रहते हैं, उन्हें आसुरी निश्चय वाले ही समझो ।४।५।६।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥७॥

सभी का प्रिय आहार भी तीन प्रकार का होता है (और) यज्ञ, तप तथा दान भी। इनके ये प्रकार सुन लो ।७।

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥८॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।।१०।।

आयु, सत्त्वगुण, बल, नीरोगता, सुख एवं प्रसन्नता को बढ़ाने वाले, रसीले, चिकने या स्नेहयुक्त, कुछ देर में पचने वाले और चित्त को पसन्द आने वाले आहार सात्त्विक जनों के प्रिय होते हैं। कड़वे खट्टे, नमकीन, ज्यादा गर्म, चरपरे, रूखे तथा जलन पैदा करने वाले आहार राजस लोगों के प्रिय होते तथा दुःख, शोक, बीमारी पैदा करते हैं। जिसे बने एक पहर गुजर गया हो ऐसा, नीरस, दुर्गन्धयुक्त, बासी, जूठा और नापाक भोजन तामस लोगों को पसन्द आता है ।८।९।१०।

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ।।११।।
अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।।१२।।
विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।१३।।

फल की आकांक्षा न रखने वाले लोग शास्त्रीय विधि के अनुकूल जो यज्ञ 'हमारा यह कर्त्तव्य है' इसी विचार से मन को निश्चल और एकाग्र करके करते हैं वही सात्त्विक यज्ञ है। हे भरतश्रेष्ठ, जो यज्ञ फलेच्छा रखके और दिखाने के लिए भी किया जाता है उस यज्ञ को राजस जानो। शास्त्रीय विधि से रहित, अन्नदानशून्य, बिना मन्त्र (और) बिना दक्षिणा के ही तथा श्रद्धा के बिना ही किये गए यज्ञ को तामस कहते हैं ।११।१२।१३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु, विद्वान् इन सबों की सत्कार-पूजा, पवित्रता, नम्रता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा (यही) शरीर का तप कहा जाता है। किसी को न चुभने वाला, सत्य, प्रिय और हितसाधक वचन (बोलना) और सद्ग्रन्थों का अभ्यास (यही) जबान की तपस्या है। मन की निर्मलता, हँसमुखपन, जबान पर काबू, मन पर नियन्त्रण (और) निष्कपट व्यवहार यही मन की तपस्या कही जाती है ।१४।१५।१६।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ।१७॥
सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥१८॥
मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥१९॥

पहले दर्जे की श्रद्धा से फलाकांक्षारहित, मन को एकाग्र किये हुये मनुष्यों के द्वारा किये गये उन तीनों ही प्रकार के तपों को सात्त्विक कहते हैं। मौखिक बड़ाई, इज्जत और पूजा के लिये और दंभ से भी जो तप किया जाता है, उस क्षणभंगुर और अनिश्चित फलवाले तप

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

को यहाँ राजस कहा है। जो तप नासमझी से ऊँट की पकड़ की तरह हठात अपने को (केवल) पीड़ा देके ही या औरों के विनाश के लिये किया जाता है उसे तामस कहा है ।१७।१८।१९।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥२०॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

देना चाहिये ऐसा समझ के ही जो दान उपकार के बदले में न होके (जरुरत की) जगह (जरूरत के) समय दान के योग्य को ही दिया जाता है उसी दान को सात्त्विक माना है। जो दान उपकार के बदले में या किसी प्रयोजन से बहुत रो-गा के दिया जाता है उस दान को राजस कहा है। (जो दान बिना जरूरत के और इसीलिये अनुचित) देश, काल और पात्र में बिना सत्कार के ही तिरस्कार पूर्वक दिया जाता है उसे तामस कहा है ।२०।२१।२२।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥

ॐ, तत्, सत् यही तीन नाम ब्रह्म के माने गये हैं और सृष्टि के आरंभ में इन्हीं तीनों (के उच्चारण) से ब्राह्मण, वेद और यज्ञ बने (भी) ।२३।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥२४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥२५॥
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

इसीलिये ॐ का उच्चारण करके ही ब्रह्मवादियों की शास्त्रीय-विधि-विहित यज्ञ, दान, तप आदि क्रियायें हमेशा हुआ करती हैं। (इसी तरह) मोक्ष की इच्छावाले फल का खयाल न करके अनेक प्रकार की यज्ञ, दान, तप रूपी क्रियायें तद् का उच्चारण करके ही करते हैं। हे पार्थ, किसी चीज के अस्तित्व के लिये तथा अच्छा हो जाने के लिये भी सत् शब्द बोला जाता है। श्रेष्ठ कर्मों में भी सत् शब्द का प्रयोग होता ही है। यज्ञ, तप और दान में जो निष्ठा एवं दत्तचित्तता होती है उसे भी सत् कहते हैं। यथार्थ या ब्रह्म के लिये जो भी कर्म हो सत् ही कहा जाता है।२४।२५।२६।२७।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

(विपरीत इसके) जो हवन, दान, तप आदि श्रद्धा से नहीं किया जाता है वह असत् कहा जाता है। (इसीलिये) न तो वह मरने पर ही किसी काम का होता है और न यहीं पर ॥२८॥

इति श्री० श्रद्धात्रयविभागयो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥७२॥

—:०:—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अठारहवाँ अध्याय

पीछे के सत्रह अध्यायों में ही गीता के सभी विषयों का आद्योपान्त निरूपण हो गया। अब कुछ भी कहना बाकी न रहा। इसीलिये कृष्ण को भी स्वयं आगे कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। इसीलिये अर्जुन के प्रश्न के उत्तर में ही बची-खुची बातें कहते हुए, या यों कहिये कि कही हुई बातों को ही दुहराते एवं शब्दान्तर से उनका स्पष्टीकरण करते हुए, उनने सबों का उपसंहार इस अध्याय में किया। यदि गौर से देखा जाय तो इस अध्याय में न तो कोई नई बात ही कही गई है और न किसी बात को कोई ऐसा रूप ही दिया गया है जो पहले दिया गया न रहा हो, या जो बिलकुल ही नया हो। त्याग का ब्योरा, कर्त्ता, बुद्धि आदि की त्रिविधता, वर्णों के स्वाभाविक कर्म आदि में एक भी बात नई नहीं है और न यहाँ किसी को नया रूप ही मिला है। या तो गीता के बाहर ही ये बातें प्रचलित रही हैं या, ऐसा न होने पर भी, गीता में ही पहले आ गई हैं। जो लोग इससे पहले के अध्यायों को ध्यान से पढ़ गये हैं उन्हें यह बात साफ मालूम होती है। त्याग के बारे में कई मत कह देना यह गीता की बात न भी हो तो कोई नई तो है नहीं। इसकी बुनियादी चीजें, जिन्हें फलेच्छा और आसक्ति का त्याग कहते हैं, पहले जानें बीसियों बार कही जा चुकी हैं। सात्त्विकादि तीन विभाग तो चौदहवें में और सत्रहवें में भी आया ही है। कुछ चुने-चुनाये और भी दृष्टान्त देने से ही नवीनता आ जाती नहीं। आत्मा का अकर्त्तृत्व और गुणों का कर्त्तृत्व भी पहले आई चुका है। सो भी अच्छी तरह। इस तरह प्रारंभ के चौवालीस श्लोकों तक पहुँच जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उसके बाद के पूरे २२ श्लोकों में कुछ में जो स्वधर्मानुष्ठान की महत्ता बताई गई है और उसी के द्वारा कल्याण की बात कही गई है वह भी पहले खूब ही आई है। फिर संन्यास यानी स्वरूपतः कर्मों के त्याग की बात जरूरी बताके जिसके लिये वह जरूरी है वह समाधि या ध्यान का भी वर्णन कुछ श्लोकों में किया है। अनन्तर उसी समदर्शन का वर्णन किया है जिसका बार-बार वर्णन आता रहा है। उसी में ज्ञानी भक्त नामक चौथे भक्त का भी जिक्र है। जो लोग ज्ञान के बाद भगवान में ही कर्मों को छोड़ के लोक-संग्रह के काम करते हैं उनका वर्णन करके हठ के साथ उलट-पलट करने या बातें न मानने से अर्जुन को रोका समझाया है। यह भी कहा है कि यकीन रखो, तुम्हें प्रिय समझ के ही यह उपदेश दे रहा हूँ; न कि इसमें मेरा कुछ दूसरा भी मतलब है। फिर भी आँखें मूँद के कुछ भी करने को नहीं कहता। करो, मगर खूब सोच समझ के। अन्ध-परम्परा अच्छी नहीं है। अन्त में ६६ वें श्लोक में संन्यास यानी कर्मों के स्वरूपतः त्यागने का, जिसके बारे में अर्जुन का प्रश्न था, वर्णन कर दिया है। इस तरह गीतोपदेश पूरा किया है। अन्त में ऐसा कहने का मौका भी इसीलिये आ गया है कि आत्मा में मन को हर तरह से बाँध देने का जो अन्तिम उपदेश अर्जुन को दिया है वह तब तक संभव नहीं जब तक नित्य-नैमित्तिक या नियत धर्म-कर्मों से छुट्टी न ली जाय? इसके बाद से अन्त तक गीतोपदेश के नियम, शिष्टाचार और परम्परा आदि का ही वर्णन है। अन्त में कृष्ण ने पूछा है कि बातें समझ में आईं या नहीं? इस पर अर्जुन ने उत्तर दिया है कि हाँ, सब समझ गया और आपकी बातें मानूँगा। इसके बाद के पाँच श्लोक तो संजय की उस समय की मनोवृत्ति की विचित्रता बताने के साथ ही कौन जीतेगा, कौन हारेगा यही बातें

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

कहते हैं। एक श्लोक कृष्ण के इस निराले तथा अलौकिक स्वरूप की याद दिलाता है जो अर्जुन को उपदेश देने के समय था और जिसका वर्णन हमने पहले ही अच्छी तरह कर दिया है। अब इनमें नई बात कौन सी आ गई है जिसके पीछे माथापच्ची की जाय ?

यही वजह है कि अर्जुन ने आरंभ में प्रश्न भी नहीं किया। उसने तो केवल इच्छा जाहिर की। सो भी संन्यास या त्याग का न तो अर्थ ही जानने के लिये है और न उनके लक्षण ही। दोनों शब्दों के अर्थ तो एक ही हैं यह पहले हो बता चुके हैं। यह भी दिखा चुके हैं प्रश्न के बाद दोनों शब्द यहाँ भी एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुये हैं। लक्षण की भी बात नहीं है। क्योंकि यहाँ लक्षण न कहके त्याग के बारे में नाना मत ही बताये गये हैं। इसे लक्षण तो कहते नहीं। चार मतों के सिवाय कृष्ण ने जो अपना मत कहा है वह भी न तो नया है और न लक्षण ही हैं। किन्तु केवल कर्त्तव्यता की बात ही उसमें है। असल में ज्ञान के अलावे गीता की तो दोई खास बातें हैं। उनमें एक को कर्मों का संन्यास या स्वरूपतः त्याग कहते हैं तथा दूसरे को साधारणतः केवल 'त्याग' कहते हैं। मगर हैं ये दोनों कठिन तथा विवादग्रस्त। इसीलिये पहले बार-बार इनका जिक्र आया है। संन्यास का तो आया ही है। त्याग का भी "संगं त्यक्त्वा धनंजय" (२।४८), "त्यक्त्वा कर्मफलासंगं" (४।२०) "संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये" (५।११), "युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा" (५।१२) तथा अन्त में "सर्वकर्मफलत्यागं" (१२।११) आदि में जिक्र आया है। इसीलिये अन्त में अर्जुन यही जानना चाहता है कि जब ये दोनों इतने विलक्षण हैं, गहन हैं और "कवयोऽप्यत्रमोहिताः" (४।१६) में यह भी कहा गया है कि बड़े से बड़े चोटी के विद्वान भी इनके बारे में घपले में पड़ जाते हैं, तो इन दोनों की अलग-अलग हकीकत, असलियत या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तत्त्व क्या है। उसके कहने का यही मतलब है कि इनके बारे में जो भी विभिन्न विचार हों उन्हें जरा सफाई और विस्तार के साथ कह दीजिये, ताकि सभी बातें जान लूँ। इसीलिये त्याग के ही बारे में पहले पाँच तरह के विचार कृष्ण ने दिखाये हैं—चार दूसरों के और एक अपना। संन्यास के बारे में तो ऐसे अनेक विचार हैं नहीं। इसीलिये अर्जुन के शब्दों में पहले आने पर भी कृष्ण के शब्दों में वह पीछे आया है। उसके बारे में केवल यही बात विस्तार से कहने की थी कि उसका मौका कब और कैसे आता है। यही उनने बताई भी है। वह अन्तिम चीज भी तो है। इसीलिये अन्त में ही उसे कहना उचित भो था। कुछ लोग नादानी से कर्मों को हर हालत में छोड़ देना ही संन्यास समझते हैं। उससे निराली ही चीज संन्यास है, यह भी बात संन्यास का तत्त्व बताने से मालूम हो गई है। नहीं तो मालूम हो न पाती। इसीलिये जो लोग संन्यास के सम्बन्ध की जिज्ञासा का उत्तर पहले ही मान लेते हैं वह मेरे जानते भूलते हैं। क्योंकि उनके मन से तो पीछे संन्यास का जिक्र निरर्थक हो जाता है।

इसी अभिप्राय से ही—

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥१॥

अर्जुन ने कहा (कि) हे महाबाहो, हे हृषिकेश, हे केशिनाशक, संन्यास और त्याग दोनों ही की अलग-अलग हकीकत जानना चाहता हूँ ।१।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ।।२।।
त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ।।३।।

श्रीभगवान ने कहा (कि) (कुछ) विद्वान सकाम कर्मों के त्याग को ही त्याग मानते हैं; (दूसरे) विवेकी जन सभी कर्मों के फलों के त्याग को ही त्याग कहते हैं; कोई-कोई मनीषी — मननशील पुरुष— कहते हैं कि कर्ममात्र का ही त्याग करना चाहिए जैसे बुराई का त्याग किया जाता है। और चौथे दल वाले कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप जैसे कर्मों को छोड़ना चाहिए ही नहीं।२।३।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्त्तितः ।।४।।

हे भरतश्रेष्ठ, हे पुरुष सिंह, उस त्याग के बारे में मेरा निश्चय भी सुन लो। क्योंकि त्याग तीन तरह के होते हैं।४।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव च ।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।५।।
एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ।।६।।

यज्ञ, दान, तप इन कर्मों को (कभी) नहीं छोड़ना, (किन्तु) अवश्य ही करना चाहिए। (क्योंकि) यज्ञ, दान, तप ये मनीषियों को भी पवित्र करते हैं। (फिर औरों का क्या कहना ?) (लेकिन) इन कर्मों को भी, इनमें आसक्ति और फलेच्छा को छोड़ के ही, करना चाहिए, यही मेरा निश्चित उत्तम मत है।५।६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्त्तितः ॥७॥
दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥८॥
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥

जो कर्म जिसके लिए तय कर दिया गया है उसका त्याग तो उचित नहीं (और अगर) मोह से उसका त्याग (कर दिया गया) तो वह तामस (त्याग) कहा जाता है। शरीर के कष्ट के भय से दुःखदायी समझ के ही कर्म का त्याग जो करता है वह (इस तरह) राजस त्याग करके त्याग का फल हर्गिज नहीं पाता। हे अर्जुन, कर्त्तव्य समझ के ही आसक्ति एवं फल के त्यागपूर्वक जो निश्चत कर्म किया जाता है वही सात्त्विक त्याग माना जाता है।७।८।९।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११
अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

संशय रहित विवेकी सात्त्विक त्यागी न तो बुरे कर्म से द्वेष करता है (और) न अच्छे में आसक्त हो जाता है। जब कि देहधारी के लिए सभी कर्मों का त्याग करना संभव ही नहीं है, तो जो केवल कर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

के फल का त्याग करता है वही (सात्त्विक) त्यागी कहा जाता हैं। बुरा, भला और मिश्रित यह तीन तरह का कर्मफल मरने के बाद सात्त्विक त्याग न करने वालों को ही मिलता है; न कि त्यागियों को भी कहीं (मिलता है) ।१०।११।१२।

पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।।१३।।
अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ।।१४।।
शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ।।१५।।
तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ।।१६।।
यस्य नाहंकृतोभावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।।१७।।

हे महाबाहो, सभी कर्मों के पूरे होने के लिए सांख्य सिद्धान्त में बताए इन (आगे लिखे) पाँच कारणों को मुझ से जान लो। (वे हैं) आश्रय या शरीर, आत्मा की संसर्गवाली बुद्धि, जुदी-जुदी इन्द्रियाँ, प्राणों की अनेक क्रियायें और पाचवाँ प्रारब्ध कर्म। शरीर, वचन या मन से मनुष्य जो भी कर्म-कायिक, वाचिक, मानसिक— शुरु करता है चाहे वह उचित हो या अनुचित, उसके यही पाँच कारण होते हैं। ऐसी दशा में अपरिपक्व समझ होने के कारण निर्लेप आत्मा को जो कोई कर्त्ता मानता है वह दुर्बुद्धि कुछ जानता ही नहीं। (इसीलिए) जिसके भीतर 'हम करते हैं' ऐसा खयाल नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

और जिसकी बुद्धि (कर्म या फल में) लिप्त नहीं होती, वह इन सभी लोगों को मारके भी न तो मारता है और न (कर्म के फलस्वरूप) बन्धन में फँसता है ।१३।१४।१५।१६।१७।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्त्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता यही तीन कर्मों के प्रेरक हैं (और) करण (इन्द्रियादि साधन) कर्म (जो बने, जहाँ कुछ हो), कर्त्ता इन्हीं तीन में कर्म का संग्रह होता है ।१८।

ज्ञानं कर्म च कर्त्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१९॥

(तीनों) गुणों के भिन्न-भिन्न होने से ज्ञान, कर्म और कर्त्ता भी सांख्यशास्त्र में तीन प्रकार के कहे गये हैं। उन्हें भी ठीक-ठीक सुनलो ।१९।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

जिस ज्ञान के फलस्वरूप सभी जुदे-जुदे पदार्थों में सर्वत्र एकरस, व्याप्त और अविनाशी वस्तु ही देखते हैं वही ज्ञान सात्त्विक समझो। सभी पदार्थों में भिन्न-भिन्न अनेक वस्तुओं की जो जुदी-जुदी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जानकारी है वही ज्ञान राजस जानो। जो ज्ञान कुछ भौतिक पदार्थों तक ही सीमित, उन्हीं को सब कुछ माननेवाला, बेबुनियाद, मिथ्या और तुच्छ है वही तामस कहा जाता है।२०।२१।२२।

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५॥

फलेच्छा न रखने वाले के द्वारा जो कर्म निश्चित रूप से आसक्ति से शून्य होके बिना रागद्वेष के ही किया जाय वही सात्त्विक कहा जाता है। जो कर्म फलेच्छापूर्वक अहंकार या आग्रह के साथ किया जाय और जिसमें बहुत परीशानी हो वही राजस कहा जाता है। जो कर्म परिणाम, बीच के नफा-नुकसान, हिंसा और अपनी शक्ति का खयाल न करके भूल से ही किया जाय वही तामस कहा जाता है।२३।२४।२५।

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते ॥२६॥
रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसः परिकीर्त्तितः ॥२७॥
अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ॥२८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जो आशक्ति से शून्य हो, जो बहुत बहके न, जो धैर्य और उत्साह वाला हो (तथा) कर्म के पूर्ण होने, न होने में जो बेफिक्र हो वही कर्त्ता सात्त्विक कहा जाता है। रागयुक्त, फलेच्छुक, लोभी, हिंसा में लगा हुआ, नापाक और (कर्म के पूरे होने, न होने में) हर्ष और शोकाकुल कर्त्ता राजस है। बुद्धि को ठिकाने न रखने वाला, गँवार, अँकड़ा हुआ, ठग, दूसरे की हानि करनेवाला, आलसी, रोने-धोने वाला और असावधान कर्त्ता तामस कहा जाता है।२६।२७।२८।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥२९॥

हे धनंजय, गुणों के भेद से बुद्धि और धृति के भी जो तीन प्रकार हैं उन्हें भी पूरा-पूरा अलग-अलग कहे देता हूँ, सुन लो।२९।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३०॥
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१॥
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२॥

हे पार्थ, जो बुद्धि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, हो सकने, न हो सकनेवाली चीज, डर-निडरता, बन्धन और मोक्ष (इन सबों) को (बखूबी) जानती है वही सात्त्विक है। जिस बुद्धि से धर्म-अधर्म तथा कार्य-अकार्य को ठीक-ठीक न जान सकें वही राजस है। हे पार्थ, तम से घिरी जो बुद्धि अधर्म को धर्म और सभी बातों को उलटे ही जाने वही तामसी है।३०।३१।३२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३३॥
यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥३४॥
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥३५॥

हे पार्थ, योग से जिसका सम्बन्ध कभी टूटनेवाला न हो ऐसी जिस धृति—विशेष प्रकार के यत्न—के बल से मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को क़ाबू में रखते हैं वही सात्त्विकी धृति है। हे अर्जुन, हे पार्थ, जिस धृति के बल से कर्म में आसक्त (एवं) फलेच्छुक (पुरुष) (केवल) धर्म, काम और अर्थ की ही बातें करता है वही राजसी है। जिस धृति के बल से आलस्य, डर, घबराहट, मद (इन सबों) को भ्रष्ट बुद्धिवाला (मनुष्य) छोड़ नहीं सकता वही तामसी मानी जाती है ।३३।३४।३५।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥३६॥

हे भरतश्रेष्ठ, अब तीन प्रकार के सुखों को भी मुझ से सुन लो, (उन्हीं सुखों को), जिनके बार-बार के मिलने से उनमें मन रम जाता है और दुःख भूल जाते हैं ।३६।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥
विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

जो सुख अपने आरंभ के समय विष की तरह कड़वा और अन्त में अमृत की तरह लगे, अपनी ही बुद्धि की निर्मलता मात्र से ही पैदा होने वाला वही सुख सात्त्विक कहा गया है। विषयों के साथ इन्द्रियों के सम्बन्ध से होने वाला जो सुख शुरू में अमृत जैसा, (लेकिन) अन्त में विष की तरह काम करे, वही राजस माना गया है। ज्यादा नींद, आलस्य और असावधानी में मालूम होने वाला जो मजा शुरू से लेकर अन्त तक आत्मा को मोह में डालने—भटकाने—वाला ही होता है वही तामस कहा जाता है।३७।३८।३९।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः।४०॥

भूमंडल में या आकाश और स्वर्ग के निवासी देवताओं तक में भी ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों से रहित हो।४०।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥४१॥

हे परन्तप, स्वभाव को बनाने वाले तीनों गुणों के (तारतम्य के) फलस्वरूप ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों के कर्म बिल्कुल ही बँटे हुए हैं।४१।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

शम, दान, तप, पवित्रता, क्षमा, नम्रता या सिधाई, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता, (ये) ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं ।४२।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।४३।।

शूरता, दब्बूपन का न होना, धैर्य, (युद्ध, शासनादि में) कुशलता, युद्ध से न भागना, दान और शासन की योग्यता, (ये) क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं ।४३।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।४४।।

खेती, पशुपालन (और) व्यापार (ये) वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं । शूद्रों का भी स्वाभाविक कर्म सेवा-रूप ही है ।४४।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु । ४५।।
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।।४६।।

अपने-अपने कर्मों में लगे रहने वाला मनुष्य ही मन की शुद्धि—बुद्धि की निर्मलता—प्राप्त कर लेता है । अपने कर्मों में ही लगा हुआ (वह यह) शुद्धि जैसे प्राप्त करता है वह भी सुन लो । जिस भगवान से ही पदार्थों की सृष्टि हुई और जो सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है, मनुष्य अपने कर्मों से ही—कर्मों के रूप में ही—उसी की पूजा करके (यह) सिद्धि—मनःशुद्धि—पा जाता है ।४५।४६।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।४७।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥४८॥

दूसरे के धर्म या स्वाभाविक कर्म को अच्छी तरह या आसानी से कर लेने पर भी उसकी अपेक्षा अपना अधूरा या दीखने में बुरा भी धर्म कहीं अच्छा है। (क्योंकि) स्वभाव के ही अनुसार निश्चित कर्मों के करने में (दरअसल) कोई पाप या बुराई नहीं होती। (इसीलिये) हे कौन्तेय, (देखने में) दोषयुक्त भी स्वाभाविक कर्म कभी न छोड़े। क्योंकि जैसे आग धुएँ से घिरी होती ही है वैसे ही सभी काम दोष से घिरे ही (नजर आते) हैं।४७।४८।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

सभी चीजों में जिसकी बुद्धि आसक्ति शून्य है. काबू में है और जो सभी इच्छा से रहित है, (वही मनुष्य कर्मों के स्वरूपतः) संन्यास के द्वारा परय नैष्कर्म्य की प्राप्ति कर लेता है।४९।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

(इस प्रकार पूर्ण नैष्कर्म्य की) सिद्धि प्राप्त कर लेने पर (मनुष्य) जिस तरह ब्रह्म को प्राप्त हो जाती है और जिसे परले दर्जे की ज्ञाननिष्ठा कहते हैं वह मुझ से जान लो। निर्मल सात्त्विक बुद्धिवाला (मनुष्य) (सात्त्विक) धैर्य के बल से मन को रोक के, शब्द आदि (इन्द्रियों के) विषयों को छोड़ के और रागद्वेष को हटाके एकान्त देश का सेवन करते हलका भोजन करते तथा जबान, मन और शरीर को काबू में रखे हुए निरन्तर ध्यान योग में ही दत्तचित्त होता एवं वैराग्य को पक्का कर लेता है। (फलतः) अहंकार, बलप्रयोग, ऐंठ, काम, क्रोध और सभी लवाजिम से नाता तोड़े हुये, ममतारहित (तथा पूर्ण) शांतियुक्त होके ब्रह्म का रूप हो जाता है।५०।५१।५२।५३।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

ब्रह्म स्वरूप निर्मल मनवाला (मनुष्य) न तो कोई चिंता रखता है, न इच्छा। वह सभी पदार्थों में समदृष्टि-रूप मेरी परम भक्ति पा जाता है। मुझ आत्मा-ब्रह्म का जो भी और जैसा भी स्वरूप है उसे इस समदर्शन रूप भक्ति के बल से अच्छी तरह जान जाता है (और) (इस तरह) मेरे तत्त्वज्ञान के बाद ही फौरन मुझ में प्रवेश कर जाता है।५४।५५।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सदा सभी तरह के कर्मों को करता हुआ भी मेरा स्वरूप बना हुआ [ऐसा मनुष्य] मेरी कृपा से—आत्मसाक्षात्कार के फलस्वरूप—निर्विकार शाश्वत पद—मोक्ष—पा जाता है ।५६।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ।।५७।।
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकाराज्ञ श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ।।५८।।
यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ।।५९।।
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।।६०।।

(इसी ज्ञानयोग की शरण जाके) मन और हृदय से सभी कर्मों को परमात्मा में समर्पित करो, उसी में चित्त लगाओ और उससे बढ़के और कुछ न जानो। परमात्मा में चित्त लगाने से उसी की कृपा से—आत्मज्ञान के ही प्रताप से—सभी संकटों से पार हो जाओगे। लेकिन यदि घमंड में आके (मेरी यह वात) न सुनोगे तो चौपट हो जाओगे। (इतना ही नहीं।) अगर अहंकार में आके तुमने नहीं ही लड़ने का निश्चय किया भी तो तुम्हारा यह उद्योग—यह निश्चय—झूठा होगा—व्यर्थ होगा (और) तुम्हारा स्वभाव तुम्हें (लड़ाई में) डाल के ही रहेगा। (क्योंकि) हे कौन्तेय, अपने स्वाभाविक कर्म के साथ जकड़े होने के कारण यदि यह काम—युद्ध—भूल से नहीं भी करना चाहो तो भी मजबूरन तुम्हें इसे करना ही होगा ।५७।५८।५९।६०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥६१॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥६२॥

हे अर्जुन, सभी प्राणियों के हृदयस्थान में ईश्वर मौजूद रहता है, ौजूद है, (और अपनी) माया शक्ति से उन्हें कठपुतली की तरह माता रहता है। हे भारत; समस्त संसार को उसी का स्वरूप जानो ौर इसी रूप में उसकी शरण जाओ। उसी की कृपा से परम शान्ति ौर शाश्वत स्थान पा जाओगे।६१।६२।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥६३॥

मैंने तुम्हें यह गोपनीय से भी गोपनीय अक्ल और सोचने-विचा- ने की बात कही है। इस पर खूब अच्छी तरह सोच-विचार के जो ाहो सो करो।६३।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

सबों से अधिक गोपनीय मेरी यह आखिरी बात फिर सुन लो। तुम मेरे अत्यन्त प्यारे हो, इसी से तुम्हारे हित की बात कहे देता हूँ।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

मुझ आत्मा में ही मन लगाओ, मेरा ही भजन करो, मेरा ही यज्ञ करो (और) मुझी को नमस्कार करो। (परिणामस्वरूप) मुझ को पा जाओगे। यकीन रखो, मेरे प्रिय हो, तुमसे सच कहता हूँ। सभी धर्मों को छोड़ के एक मेरी ही शरण जाओ। मैं (आत्मा) तुम्हें सभी पापों से छुटकारा दिला दूँगा, अफसोस मत करो।६४।६५।६६

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥६७॥
य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥
श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

यह (उपदेश) तुझे तपशून्य लोगों से कभी नहीं कहना होगा जो न तो भक्त हों, न श्रद्धापूर्वक सुनने के लिये लालायित हों (प्रत्युत) हमारी निन्दा करते हों। (विपरीत इसके) जो कोई ये बातें मेरे भक्तों को सुनायेगा वह मुझमें (ज्ञानरूप) पराभक्ति करके निस्सन्देह मुझे ही पायेगा। (इतना ही नहीं।) मनुष्यों में उससे बढ़ के मेरा प्रिय करनेवाला और भूमंडल में उससे बढ़ कर मेरा प्रिय कोई होगा भी नहीं। साथ ही, जो कोई हम दोनों के इस ध

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

युक्त संवाद को पढ़ेगा वह ज्ञानयज्ञ के द्वारा मेरी पूजा ही करेगा, ऐसा मैं मानता हूँ। जो मनुष्य श्रद्धायुक्त हो तथा निन्दा की भावना छोड़ के इसे (केवल) सुनेगा भी वह भी मरने पर पुण्यकर्मा लोगों के शुभ लोकों या समाजों में जा पहुँचेगा ।६७।६८।६९।७०।७१।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥७२॥

हे पार्थ, भला कहो तो कि आया तुमने यह उपदेश एकाग्र चित्त से सुना है (और अगर हाँ, तो) आया तुम्हारा (वह) अज्ञान से उत्पन्न हृदय का अन्धकार मिटा है ? ।७२।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

(इसपर चट) अर्जुन ने उत्तर दिया कि हे अच्युत, आपकी कृपा से (मेरा) मोह भाग गया, (वह) स्मृति (पुनरपि) जग उठी और मैं सन्देह रहित—स्थितप्रज्ञ—हो गया हूँ। (इसीलिये) आपकी बात मानूँगा ।७३।

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥
व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५॥

संजय ने कहा (कि) इस तरह वासुदेव कृष्ण और महात्मा अर्जुन

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

का यह अद्‌भुत (एवं) रोमांचकारी संवाद मैंने (खुदबखुद) सुना था। व्यास की कृपा से यह अत्यंत गोपनीय योग मैंने स्वयं योगेश्वर कृष्ण से साक्षात् कहते हुए ही सुना था।७४।७५।

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य सम्वादमिममद्‌भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥७६॥

हे राजन् केशव तथा अर्जुन के इस महान संवाद को (इस समय भी) बार-बार याद करके रह-रह के गद्‌गद हो जाता हूँ।७६।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्‌भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः॥७७॥

हे राजन्, हरि का—कृष्ण का—यह अत्यंत अद्‌भुत रूप याद कर-कर के मुझे महान् विस्मय हो रहा है और बार-बार गद्‌गद हो जाता हूँ।७७।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥७८॥

जहाँ—जिस पक्ष में—योगेश्वर कृष्ण हैं (और) पार्थ (जैसा) धनुर्धर है वहीं लक्ष्मी, विजय, ऐश्वर्य और पक्की—अटल—नीति है, यही मेरा निश्चय है।७८।

इति श्रीमद्‌भगवद्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥



Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G
Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

मुद्रक :— स्वामी सहजानन्द स्मारक प्रेस
श्री सीतारामाश्रम, बिहटा, पटना ।

ru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

ru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon